





भागवत कथा, पृष्ठ २.- रामायण श्रृंगार

श्री भागवत-दर्शन द्वै-

## भागवती कथा

( बत्तीसवाँ खण्ड )

ति माधव भक्त  
व्यासरावोपवनतः सुमनांसि विचिन्वति ।  
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती-कथा' ।

लेखक (कादम्ब) दी

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

●

प्रकाशक

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर  
(मून्सी) प्रयाग

●

श्रीमद्भागवत-संस्कृत-संस्करण } माघ वसंतपंचमी } खंडोधिपद-संख्या २ : १२५  
१००० } स० २०२७ } मूल्य : १.२५

मुद्रक—वसोधर शर्मा भागवत प्रेस, ८५२ मुहम्मद, प्रयाग ।

## विषय-सूची

| विषय                                                | पृष्ठांक |
|-----------------------------------------------------|----------|
| १—संक्षिप्त श्रीकृष्ण-चरित                          | ...      |
| २—महाराज परीक्षित का श्रीकृष्ण-चरित-सम्बन्धी प्रश्न | ७        |
| ३—महाराज परीक्षित की कथा श्रवण में उत्सुकता ..      | १६       |
| ४—श्रीगुरु द्वारा परीक्षित-प्रश्नों की प्रशंसा      | ...      |
| ५—भगवान् के अवतार के निमित्त                        | ...      |
| ६—श्रीहृद्द्वारा भू और देवों को आशवासन              | ...      |
| ७—वसुदेवजी का विवाह                                 | ...      |
| ८—कंस को आकाशवाणी                                   | ...      |
| ९—वसुदेवजी की प्रतिष्ठा                             | ...      |
| १०—वसुदेवजी द्वारा कंस को पुत्र प्रदान              | ...      |
| ११—कंस की सभा में देवपि नारदजी                      | ...      |
| १२—कंस स्वयं राजा बन गया                            | ...      |
| १३—दोषावतार श्रीवल्लभजी का प्राकट्य                 | ...      |
| १४—विश्वामा का वसुदेवजी के श्रुतःकरण में प्रवेश...  | ...      |
| १५—हिरण्यगर्भ का देवकी के गर्भ में प्रवेश           | ...      |
| १६—कंस की चिन्ता                                    | ...      |
| १७—गर्भगत श्रीहृद् की देवों द्वारा स्तुति           | ...      |
| १८—श्रीकृष्ण जन्म                                   | ...      |
| १९—श्रीहृद् और श्रीवसुदेव देवकी                     | ...      |
| २०—गोकुल की गेल में                                 | ...      |
| २१—नन्दराजी के प्रसव                                | ...      |
| २२—कारावास में कन्या-योगमाया                        | ...      |
| २३—कारावास में कंस                                  | ...      |
| २४—योगमाया की भविष्यवाणी                            | ...      |
| २५—कारावास से श्रीदेवकी वसुदेवजी की मुक्ति          | ...      |



## संक्षिप्त श्रीकृष्ण-अरिस्त

[ ८१२ ]

जातो गतः पितृगृहाद् व्रजमेधितार्थो  
हत्वा रिपून् सुतयातनि कृतोरुदारः ।  
उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे  
आत्मानमात्मनिर्गर्भं प्रथयञ्जनेषु ॥ॐ  
( श्रीभा० ६ स्क० २४ प० ६६ श्लो० )

### छप्पय

जन्म अष्टमी पक्ष कृष्ण भादौ की रजनी ।  
विद्युत् घन महँ बमक उठे काची जनु वजनी ॥  
पितु कूँ आशा दर्ई गये गोकुल गिरधारी ।  
नन्द यशोदा सहल मनहु खिलि गई उजारी ॥  
गो गोपी अरु गोपगन, संग नित हरि कीड़ा करहि ।  
असुर देहि दुख सबनि कूँ, हनि तिनकूँ जग नय हरहि ॥  
जो बुद्धिमान मिठाई बेचने बाले होते हैं, जिन्हें अपनी  
मिठाई की उत्तमता पर पूर्ण विश्वास होता है और जिन्हें योग्य

\* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—“राजन् ! श्रीकृष्ण न जन्माष्टमी के दिन  
जन्म लिया । तदन्तर के भवने पिता के घर से गोकुल गये, वहाँ बड़े  
हुए, भवन दाबूजी का सहार किया । फिर बहुत सी पत्नियों का पाछे-  
ग्रहण करके उनमें पुत्र उत्पन्न किए तथा लोगों से वेदमर्मज्ञ स्थापित  
करने के निमित्त मनकी यशो द्वारा भवन भाए हो भवन यज्ञ किया ।”

उत्तम ग्राहक की भी परीक्षा होती है, वे पहले उत्तम अधिकारी को बिना मीने कुछ मिठाई बागमी के लिये दे देते हैं। उसका रस चबकर वह व्यक्ति जिसकी जिह्वा मधुर रस को चखते ही लपलपाने लगती है, वह फिर बिना मिठाई लिये रह नहीं सकता ! इसी प्रकार उत्तम वक्ता अधिकारी श्रोता को कथा का सूत्रपात करके उसकी उत्सुकता को बढ़ाते हैं। यदि वह आगे के लिये उत्कृष्टापूर्वक जिज्ञासा करता है, तब तो उसे आगे की कथा बताते हैं, नहीं तो उसे समाप्त कर देते हैं। सूत्रपात करने से अधिकारी की परीक्षा हो जाती है।

सूत्रजी कहते हैं—“मुनियो ! अब मैं आपको श्रीकृष्णचरित सुताता हूँ। भाद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी को अर्धरात्रि के समय मथुरा के कारावास में भगवान् का जन्म हुआ। तदनन्तर वे अपने पिता के घरसे नन्द बाबा के गोकुल में गये। वहाँ कुछ-कुछ बड़े हुए। माया ने प्रथम ही पूतना को उपहार-रूप में खिलौना भेजा। कुछ देर तक तो उसकी बनी ठनी मुड़िया से वे खेलते रहे। फिर याद आई, मुड़ियों से तो लटकियाँ खेलती हैं, मैं तो लडका हूँ। मामा की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। लडकों को मार कर उन्हें लटकियाँ ही दिखाई देती हैं। इतना स्मरण आते ही उन्होंने उस मुड़िया की तोड़-मरोड़ डाला। वे कुछ बड़े होते तो कुम्भा की तरह उन बहू बना लेंगे, किन्तु दूधमुँहा बच्चे बने थे। उसने आते ही मुँह में स्नान दूँस दिया। अब तो वह धर्म की माता बन गई। उन्होंने उसे माना की गति दी। फिर सोचा, माँ ने तो मुझे महार के महलो में ही बन्ध कर रखा है। कारावास भोगने की मेरी माता पिता ही बहू हैं, मैं ब्रज का सेर-सपाटा करूँगा, ऊपर उड़कर सब ब्रज के घरों की देखूँगा। बैसे उड़ूँ तो मोल-भाले गोप डर जायेंगे, मुझमें भूत वा अम करने लगेंगे। इस

लिये उन्होंने भभूड़े भूत को बुलाया। उसे ही उड़नखटोला बनाया। वे उस तृणावर्त अमुर के ऊपर चढ़ ही तो गये। उसके गले को कस के पकड़ ही तो लिया। अब उन्हें लालाजी ऊपर, तिक-तिक करके उस भभूड़े भूत को हाकने लगे। ऊपर चढ़कर ब्रज की शोभा देखी, घर-घर दूध गरम हो रहा है, बड़ा भारी धुआँ हो रहा है। तृणावर्त की आँखों में धुआँ भर गया। उसके कल-पुरजे बिगड़ गये। उड़नखटोला ऊपर न उड़कर, नीचे ही गिरा। आपने कहा - “चल वे हम ने जितना देख लिया, उतना ही बहुत है। नीचे उतर आये और रोने लगे। रोने बयो लगे जो। इसलिये कि उनका बायुधान चकनाचूर हो गया। उसके बनने की आशा न रही। खिलौने के फट से फूट जाने पर कभी-कभी बच्चे ताली देकर हँस भी लेते हैं, कभी रोने भी लग जाते हैं। माता ने गाड़ी में उसे सुला दिया। आपने सोचा, हम तो सो रहे हैं, यह गाड़ी गढ़ी है। लामो इसे भी सुला दो, दोनों साथ-साथ सोवें। मारी जो ठोकर छड़बधुम। गाड़ी भी सो गई और उस में के धी-दूध के कुप्पे भी फूट गये। फिर बरसासुर से बातें हुई, बकासुर की चोच को चर से चोर ने चीर दिया। चोरी की बिछा में बिसारद आचार्य या महामहोपाध्याय हो गये। वेतुक की मारा कालिवनाग का दमन किया, प्रलम्ब को पछाड़ा, अजगर को उबारा। शङ्खचूड़, अरिष्ट तथा केशी आदि राक्षसों का उद्धार किया। वे गोकुल से फिर मथुरा आये, मथुरा से द्वारका आये। जो-जो भी राजा शत्रु बनकर सम्मुख आये, उन सबने प्राण गँवाये। फिर एक नहीं दो नहीं, दश नहीं, बीस नहीं, सौ नहीं, हजार नहीं- सोलह हजार एक सौ आठ राजकुमारियों के साथ विवाह किये। सब में दश-दश पुत्र पैदा किये। कितने पुत्र हुए, किसी अर्थशास्त्री से गणना करानी

पड़ेगी। फिर उन्होंने यज्ञ किये, दान दिये, प्रायश्चित्त किया। परमात्मा होकर ये सब काम क्यों किये ? यज्ञों में उन्होंने यजन किनका किया ? अथवा ही यजन किया। स्वय ही ठाकुर, स्वय ही पुजारी। स्वय ही कर्त्ता, स्वय ही भोक्ता, स्वय ही यज्ञ, स्वय ही यजमान। चोनी का ही घोड़ा, चोनी का ही सवार। उन्होंने यह सब इसलिये किया, जिससे वेदकी मर्यादा बनी रहे—धर्म की मर्यादा स्थापित करने को यह लीला रची। फिर बौरव पांडवों में कलह करा दी, स्वय ही उसके सुसुधार थे। वे स्वय ही दूत बनकर गये, चार से कहा तू चोरी कर, साह से कहा, तू सावधान रह। कंसी लोला है, कंसा नाटक करते हैं नटनागर ? उन्होंने अर्जुन के हाथ में भूटे बाण दे दिये, साथ ही पोटलीमर के अभिमान भी। अर्जुन समझ रहे थे, सब मेरे बाणों से मर रहे हैं। किन्तु निर्जीव बाण भला किसी को कैसे मार सकते हैं ! फिर और मारन वालों के हाथों में भी बाण थे। यथार्थ बात तो यह है, जिसकी ओर ये मरने के विचार से दृष्टि पात करते, वही उसी समय मर जाता, रणभूमि में गिर जाता। समस्त सेनाओं का सहार कराके सव्यसाची अर्जुन की विजय उन्होंने घोषित की। तदन्तर अपने कुल में भी कलह करा दी। कुल में कलह कृष्ण ने क्यों कराई ? इसका कोई उत्तर नहीं। उनके कार्यों में क्यों का प्रश्न नहीं। उनको इच्छा ही एकमात्र प्रधान कारण है। अन्त में उद्यव को जात्मज्ञान का उपदेश देकर वे निज आश्रम को चले गये।" इसना कहकर सूतजी चुप हो गये। सूतजी को चुप देखकर उत्सुकता, आश्चर्य और सन्नम सहित सोनवजी ने पूछा—सूतजी ! क्या धोकृष्ण-चरित ही गया ? महाभाग ! इसको देर पहाड़ छोड़ा, निकसी एग मूसरी, सोन दिन बिना खाये—सीये भोजन की प्रतीक्षा थी, मिला एक

सकलपारा। कब से कह रहे हो, श्रीकृष्ण-चरित कहूँगा, श्रीकृष्ण चरित कहूँगा। कहा भी तो दो वादों में उसे समाप्त कर दिया। क्या इतने ही के लिये आपने इतनी देर बशों के भीत गये। एक-एक राजा की कथा में तो आपने न जाने क्या-क्या वर्णन किया। हम धर्म से सब मुक्त रहे चलो, इन सब की भी मुन लो श्रीकृष्ण चरित सुनने को मिलेगा। सो आपने तो हमारी आशा पर ही पानी फेर दिया। महाभाग! हमारी उम्ति नड़ी हुई, अपितु और भी अधिनाधिक उत्सुकता बढ गई।"

हँसते हुए सूतजी बोले—“महाराज! श्रीकृष्णचरित समाप्त नहीं हुआ है। मेरे गुरुदेव भगवान् शुक ने राजा परीक्षित की उत्कटा बढाने की ही अत्यन्त सलेप में श्रीकृष्ण-चरित की वानगी बधा दी। उन्होंने सोचा— राजा की उत्सुकता भी तो देखें, श्रीकृष्ण चरित सुनने को कितने उत्कण्ठित है। आज महाराज परीक्षित को बिना अन्न जल ग्रहण किये चार दिन समाप्त हो गये। मेरे गुरुदेव जानना चाहते थे कि भूख से राजा व्याकुल तो नहीं हो गये हैं। यदि व्याकुल हो तो कुछ जलपान कर लें, क्योंकि चित्त भूख-प्यास या अन्य किसी विषय की चिन्ता में फँसा रहता है तो कथा श्रवण में मन नहीं लगता इसीलिये श्रीशुक ने इस प्रकार सक्षिप्त श्रीकृष्ण चरित कहा।"

शोनकजी ने कहा—“हाँ तो सूतजी! महाराज परीक्षित ने फिर किस प्रकार कौन से प्रश्न किये, इन सबको विस्तार से भाप कहें। अब श्रीकृष्ण-चरित में कृपणता न करें।"

शोनकजी ने कहा—“श्रीकृष्ण-चरित को विस्तार के साथ सत्तार में कौन बह सकता है? ब्रह्मादि देव भी उनका पार नहीं पा सकते। अतः मैंने जो भी कुछ चरित अपने गुरुदेव से सुने हैं, उन्हें ही कहूँगा। अब जिस प्रकार महाराज परीक्षित ने प्रश्न

पूछे उरहो का वर्णन मैं करता हूँ। आप सब अब समर्हित  
चित्त हो जायें।”

#### छप्पय

गोकुल ते पुनि लौटि सबल मधुरा महँ आवे ।  
हरि हरि रन कूँ छोड़ि भगे रगछोर कहाये ॥  
आइ द्वारका आह सहस सोलह करवाये ।  
पुत्र पोत्र बहु बदे गिरलि यादव भरवाये ॥  
करि कुल को सहार हरि, जब व ई शिखा दई ।  
यो प्रभास महँ अन्त की, पूरन भू-लीला मई ॥



## महाराज परीक्षित का श्रीकृष्ण-चरित- सम्बन्धी प्रश्न

[ ८१३ ]

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ।  
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥  
यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ।  
तत्रांशेनावतीर्णं स्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥❧

(श्रीभाग० १० स्क० १ अ० १-२ श्लोक)

छप्पय

प्रभु चरननि कूँ चन्दि व्याससुत मौन भये जब ।  
सुनि संक्षिप्त चरित्र विकल है चोले रूप तब ॥  
चन्द्रवश रविधश माहि बहु भये मूषगन ।  
सुनि शम तिविके चरित सुदत अति भयो मोर मन ॥  
अब अति रसमय सारमय, सुखमय अनुपम शक्तिमय ।  
कृष्णचरित गुरुवर ! कहहु, हृदय होहि प्रभु-भक्तिमय ॥

वित्त चोर के चारु चरित्रो के श्रवण की चटपटी जिन को

\* महाराज परीक्षित श्रीशुकदेवजी से पूछते हैं—“भगवन् ! आपने सोमवश और सूर्यवश के राजाओं के वंश का विस्तार पूर्वक वर्णन किया और इन दोनों वंश वाले राजाओं के अद्भुत-प्रदभुत चरित भी सुनाये, इसी प्रसंग में धर्मरत्ना महाराज यदु के वंश का भी वर्णन किया । अब आप हमें उसी वंश में विष्णु के अवतार से उत्पन्न श्रीकृष्ण के चरित सुनाइये ।”

लग जाती है, उन्हें ससार की सुधि ही भूल जाती है। आहार, निद्रा, भय, मृत्यु आदि में जब धर्म है। जीव इनके बिना रह नहीं सकता। प्राणिमात्र इनमें सुख का अनुभव करते हैं, किन्तु जो इन धर्मों से ऊपर उठ जाते हैं, उनके लिये आहार, निद्रा आदि व्यर्थ से बन जाते हैं, वे उस रम में ऐसे निमग्न हो जाते हैं, कि उनको इन वानों की स्मृति ही नहीं रहती। जीवों की जब तक देह में आत्म बुद्धि है, तभी तक देह को पुष्ट और प्रसन्न करने वाले परार्थ प्रिय लगते हैं। जहाँ आत्म-स्वरूप श्रीकृष्ण के स्वरूप का बोध हुआ यथायत्न का अनुभव हुआ, तहाँ देह-सम्बन्धी सुखों की तो बात ही क्या, देह की भी सुधि सुधि नहीं रहती।

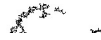
सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! जब भगवान् श्री शुक सक्षित श्रीकृष्ण-नरित कहकर चुर हो गये, तब परम भागवत् भरत-वशावतम कुरुकुत की कीर्ति को लटाने वाले अभिमन्युतमय उत्तरानन्दवर्द्धन महाराज परोक्षित ने उत्सुकता और धैर्य के साथ कहा—“भगवन् ! आपने आज चार दिनों से बड़ी ही सुन्दर-सुन्दर एक से एक अद्भुत-सरस कथाएँ सुनाईं। आपने भगवान् के वक्त्र, मच्छ वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम आदि अवतारों की भी कथाएँ सुनाईं। सनार में सर्ववश और सोमवश—ये ही क्षत्रियों के सर्वश्रेष्ठ वश समझे जाते हैं। प्रायः सभी प्रकार के क्षत्रियों की उत्पत्ति इन्हीं दो वशों से हुई है। आपने इन दोनों ही वशों का कहीं संक्षेप से, कहीं विस्तार से बखान किया। इन वशों में उत्पन्न हुए राजाओं की सुन्दर, शिवाप्रद, विचित्र, आश्चर्यजनक असंभव सी प्रतीत होने वाली कथाएँ भी सुनाईं। मक और भगवान् की कथाओं का ही नाम भागवती कथा है। जहाँ जहाँ आपने अवतारों का वर्णन किया है, वही—



वहाँ स्थान-स्थान पर आप कहते गये हैं कि ये सब अवतार तो कोई कलावतार है, अशावतार है, कोई आवेशावतार है, कोई भगवन्तरावतार तथा युगावतार हैं, किन्तु यदुनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र तो स्वयं साक्षात् परात्पर ब्रह्म ही हैं। जिस धर्मात्मा यदु के वंश में यदुनन्दन यादवैन्द्र उत्पन्न हुए हैं, उन यगति-पुत्र यदु के वंश को भी आपने विस्तार से कहा। उनके और भी तुलसु दूखु, भानु और पुरु-इन चारों भाइयों के वंशों का वखन किया। अब हम आपसे यदुवंश में अवतीर्ण भगवान् वासुदेव के चार चरित विस्तार के साथ सुनना चाहते हैं। अब सब कहानी-कथाओं को छोड़कर हमें उसी यदुवंश में अपने समस्त अंशों व सहित अवतीर्ण हुए भगवान् विष्णु की ललित लीलाओं को सुनाइये। परम पावन यदुवंश में अवतीर्ण होकर अखिलेश्वर देवकीनन्दन ने कौन-कौन-सी कर्ण तथा समस्त इन्द्रियों को सुख देने वाली शोभा की? श्रीकृष्ण-चरित मुझे ही नहीं, सभी प्रकार के प्राणियों को प्रिय है।”

श्री शुकदेवजी ने कहा—‘राजन् ! भगवान् ने तो माया का आश्रय लेकर प्राकृतवत् लीलायें की? नित्य अव्यक्त ज्ञान स्वरूप आत्मा में रमण करने वाले ज्ञानियों को ये प्राकृतवत् लीलायें प्रिय कैसे हो सकती हैं?’

हँसकर महाराज परोक्षित बोले—‘भगवन् ! ज्ञानियों के हृदय की तो ये ललित लीलायें हार ही हैं। प्राकृत-सी प्रतीत होने पर भी ये सब लीलायें दिव्य हैं, चिन्मय हैं, ऊपर से भेदा की चनी सी दिखाई देती हैं, किन्तु भीतर इतनी पोनी हैं कि उनमें रस ही रस भरा है, जहाँ जिह्वा से इनका सतर्प हुआ, कि फिर कैसा भी जानी छयाती हो, उससे इन्हें बिना चले रहना नहीं आता। यथार्थ में इन लीलाओं के, अधिकारी तो जानी ही हैं।



इनका प्रत्यक्ष प्रमाण भगवन् ! आप ही हैं। आपमें बढकर सवार में दूसरा जानी कौन होगा ? आप जब भगवान् की लीलाओं का वर्णन करने लगते हैं, तब तन्मय हो जाते हैं, उन्हीं के रस में निमग्न होकर आत्म-विस्मृत से बन जाते हैं। यदि इनमें अपूर्व रस न होना, तो आप जले परमहंस चश्चूडामणि कीतराम त्यागी त्रिरागी सन्यासी इनका इनमें उल्लाम के साथ वखन क्यों करते ?”

आशु क बोले—“बच्छा, जानियो की बात तो दो छोड। उनको दृष्टि में तो जगत् को सत्ता ही नहीं, वे तो सब प्राणियो में, समस्त घटनाओं में, उसी सच्चिदानन्दस्वरूप के दर्शन करते हैं, किन्तु श्री कृष्ण की सरस श्रीर शृ गारपूर्ण कथाओं को सुनकर मुमुक्षुओं का तो पतन हो सकता है, उनका चित्त तो चंचल हो सकता है। अतः मुमुक्षुओं के लिये ये लीलाये हितकर कैसे हो सकती हैं ?”

महाराज परोक्षित ने कहा— भगवन् ! आप सब जानते हैं। आप मेरी परीक्षा ल रहे हैं कि मैंने मनोयोग से कथा सुनी है या नहीं। मुमुक्षुओं के लिये तो श्री कृष्ण कथा श्रवण के अतिरिक्त मुक्ति का कोई सरल सुन्दर सर्वोपयोगी अन्य साधन ही नहीं। उनकी अप्राकृतिक, सरस लीलाओं को सुनते सुनते ही उनका प्राकृत जगत् में चित्त हट जायगा। उनको दृष्टि में श्री-कृष्ण लीलाय ही गड जायेगी। उन्हें श्रीकृष्ण लीला के अनिरिक्त कुछ दिवाई ही न देगा। यह जगत् उनकी लाला का जिनसमाय ही प्रवीत होने लगेगा। सभी में उनकी मुरली की मधुर स्वन सुनाई देगी। अतः मुमुक्षुओं के लिये तो श्रीकृष्ण कथाये अवरोग को अङ्क भेषज हैं प्रत्ययं शोपधि हैं।”

श्रीशुक ने कहा— राजन् ! आपने श्रीकृष्ण-कथा को सर्व-

प्रिय बताया। बद्ध मुक्त और मुमुक्षु—तीन ही प्रकार के जीव होते हैं। उनमें से मुमुक्षु और मुक्तों को तो कृष्ण-कथाएँ प्रिय होगी ही, किन्तु ससारी-बद्ध लोगों को तो भगवान् की चर्चा रुचिकर ही नहीं होती। उनको तो विषय-वार्ताएँ ही प्रिय हैं। उनके लिये कृष्ण-कथा कैसे कल्याणप्रद और सुखकर हो सकती है ?”

महाराज परीक्षित ने कहा—“हाँ, भगवन् ! यह बात सत्य है कि बद्ध जीवों को भगवत्-वार्ता नहीं सुहाती, अवतार-चरित्रों में उनका मन नहीं लगता, किन्तु भगवन् ! श्रीकृष्ण कथा इसमें अपवाद है। भले ही उन्हें कच्छ, मत्स्य, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम आदि कथाएँ रुचिकर न हों किन्तु ये कृष्ण की कथाएँ तो ऐसी आकर्षक हैं कि प्राकृत बद्ध जीवों का भी मन हठात् इनकी ओर आकर्षित हो जाता है। रासविहारी ने इन लीलाओं की इतने कोशल के साथ किया है, कि जिसकी जमी भावना होती है, उसे वे वैसे ही दिखाई देती हैं। ससारी लोगो ने जहाँ गोपियों के नख-सिख का बरुन सुना, जहाँ कुण्डलों की आभा से दमकते हुए कपीलो कन्धु से प्राप्त पौन पयोधरो और काञ्चीकलाप परिरम्भ नितम्बविम्बों का बरुन सुना तहाँ वे सब बातें भूल जाते हैं उस रस में बहने लगते हैं।”

श्रीशुक ने कहा—“यह तो राजन् ! कुछ बात नहीं हुई, सुरापी को सुरापान कराके अपने पक्ष में कर लेना, उसके व्यसन को और बढ़ाना है। विषयो को विषय-सामग्री प्रदान करके उनके बन्धन को और सुदृढ़ करना है।”

इस पर राजा बोले—“नहीं, भगवन् ! यह बात नहीं। विष की ओषधि विष ही है, स्थावर विष जड़म विष से नष्ट हो जाता। इसी प्रकार प्राकृत सरसता दिग्ध सरसत”

मष्ट हो जाती है। इसीलिये तो रास-लीला का श्रद्धा से श्रवण करने का फल त्रितेन्द्रिय होना है।”

श्रीशुक बोले—“जिनके श्रद्धा न हो, उनकी क्या दशा होगी?”

महाराज बोले—“न हो श्रद्धा! मिश्री को अन्धेरे में लाओ, तो भी मीठी लगेगी; अग्नि को अग्नजान में ढूँओ, तो भी जला देगी। श्रीकृष्णलीलाओं के तो श्रवणमात्र से ही कल्याण होता है। ये लीलायं इतनी रसगंधी है कि सभी प्रकार के प्राणियों के मन को उनके कानों की, अत्यन्त ही प्यारी लगती हैं। उत्तम दलोक भगवान् वासुदेव के गुणानुवाद केवल पशुघ्न-प्रातमघातो-वधक प्रकृति के लोगों को छोड़कर सभी का अच्छे लगते हैं। हतभागियों को छोड़कर और ऐसा कौन-सा सहृदय प्राणी होगा, जो उनसे विमुख होगा। श्रीकृष्ण की छीलाएँ वैसे तो सभी को प्रिय हैं, वे सभी के आत्मा हैं, किन्तु मेरा तो उनमें विशेष सम्बन्ध है, वे मेरे तो कुल-उद्धारक हैं। मेरे पितामह तो उग्री के पाद-पद्मों की नौका बनाकर महा-भारत रूप समुद्र को ही नहीं तर गये, इस अपार संसार सागर को भी सहज में ही पार कर गये। आप ही सोचिये भगवन्! महाभारत कोई साधारण सागर थोड़े ही था। वह जगत् सागर सागर के समान था, जिसमें समस्त विद्वत् को निगलने की शक्ति रखने वाले भोष्म द्रोण आदि तो तिमि, तिमिङ्गल, तिमिङ्गल ज्ञान महामत्स्यों के समान थे। इन महारथियों के नाम से दृष्टादि देव धर-धर कपिते थे। उस समुद्र को मेरे धर्मराज आदि पितामह श्रीकृष्णधरणीरूप नौका को पकड़कर गोवर्त के गुर के समान लीप गये। उन्हें उसमें चढ़ना तक नहीं पड़ा।”

श्रीशुक बोले—“रात्रन्! इतने दूर के सम्बन्ध की कोन



माया मनुष्य माधव की मनोहर, मधुर तथा मधुमय लीलाओं का आप जब वर्णन करे। मेरी कुछ शिकायें हैं, प्रथम उनका समाधान करे, साथ ही श्रीकृष्णचरित का भी वर्णन करे। इस सम्बन्ध में मैं कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ।'

श्रीशुकदेवजी बोले—'राजन्! पहले आप अपनी शिकायों को कीजिये, फिर जो-जो प्रश्न आपको करन हों, वे प्रश्न कीजिये और कुछ जलपान भी कर लीजिये; क्योंकि भूत में कथा भली भाँति समझी नहीं जाती। ससार में सब स बड़ा कष्ट है वृद्धावस्था का। वृद्धावस्था में इन्द्रियाँ धिमिल हो जाती हैं पाचन शक्ति नष्ट हो जाती है विषयो की भोगने की वामना बनी हुई रहती है। यहाँ नहीं, वह ओर प्रवल हो जाती है। इन्द्रियाँ भोगों की भोगने में समर्थ नहीं होती शरीर-सम्बन्धी आवश्यक कार्य भी नहीं किये जा सकते। घर वाले भलीभाँति बोलते भी नहीं, सभी धृष्टा करते हैं। जीवित ही मरक हो जाता है। वृद्धावस्था से भी अधिक बड़ पुत्र की मृत्यु पर होता है। पुत्र-मृत्यु से बढ़कर ससार में कोई दुःख नहीं। उससे भी बड़ा दुःख वृद्धा का कष्ट है। भूख में मनुष्य सब कुछ भूल जाता है। इस विषय में एक उपाख्यान है।

धृतराष्ट्र के जब सौ पुत्र मर गये, तब उन सब के शव एक घेर वृद्ध के नीचे घर्मराज की आज्ञा से एकत्रित किये गये। माता गान्धारी अपने पुत्रों की मृत्यु पर रो रही थी वह श्रीकृष्ण भगवान् को कोस रही थी, कि इन्होंने मेरे पुत्रों को मरवा दिया है। ये चाहते तो मेरे पुत्र न मरते।' उसी समय भगवान् की माया में उसे भूख लगी। इतनी भूख लगी कि उससे रहा नहीं गया। वहाँ घोर अरुण्य में खाने को क्या रहा था? पुत्रों के मृतक शरीर सड़ रहे थे, उनसे दुर्गन्ध निकल रही थी। गान्धारी भूख से

महाराज परोक्षित का श्रीकृष्ण-चरित-सम्बन्धी प्रश्न १५

व्याकुल थी। समय की बात। और कोई समीप था नहीं। उसने तनिक पट्टी हटाकर देखा, तो उस बेर के घृथ पर पके हुए बेर लग रहे हैं। छड़े होकर उसने बेर ताड़ना चाहा, हाथ पहुँचा वहीं कुछ कसर रह गई। माता न सोचा— ये लड़के तो अब मर ही गये हैं। ये अब जीवित तो हो ही नहीं सकते। बयो न दो-चार सबो को रखकर उनके ऊपर चढ़कर बेरो को तोड़ लूँ और अपनी प्रबल बुभुक्षा को शान्त कर लूँ।' यह सोचकर उसने ऐसा ही किया। फिर भी हाथ नहीं पहुँचा। क्रमशः उसने सभी पुत्रों के शव को रखकर बेर तोड़ने का प्रयत्न किया। इतने ही में श्रीकृष्ण वहाँ आ पहुँचे और बोले— 'बूढ़ाजी क्या कर रही हैं ? आप इतना वृद्ध क्यों करती हैं ? कहे तो मैं बेर तोड़ दूँ।'

यह सुनकर गाम्भारी लज्जित हुई और बोली— 'भगवन् ! आपकी माया विचित्र है। कोई इसका पार नहीं पा सकता। सो, राजन् ! आपको भूल वा बट हो रहा होगा। पहिले कुछ खा लें, सब मैं आपके प्रश्नों का उत्तर दूँगा।'

सूतजी कहते हैं— 'मुनियो ! यह सुनकर राजा परोक्षित गम्भीर हो गये और श्रीकृष्ण-चरित सम्बन्धी प्रश्न करने लगे।

छप्पय

तनय रोहिणी देव ! प्रथम बलदेव बताये ।  
मातृदेवकी पुत्र आठ महँ केरि गिनाये ॥  
एक देह तो दूँ उदरनि महँ जन्मे कैसे ।  
कहै रोष की कथा भये सकषण जेते ॥  
घर तनि प्रज महँ दुर्गक के बसे अर्हराज वंश च्यौ ।  
च्यौ भागे रन छोड़ि के, मारे मामा वस च्यौ ॥

## महाराज परीक्षित की कथा श्रवण में उत्सुकता

[ ८१४ ]

नैपातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ।

पिवन्तं तन्मुखाभोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥ॐ

(श्रीभा० १० ८१० १ प०, १३ श्लो०)

छप्पय

नन्द यशोदा त्वागि फेरि च्यौ मथुरा आवे ?  
च्यौ मथुरा ते वस्तु द्वारका लाइ बसाये ?  
च्यौ अति मधुमय चरित गोप गोपिनिहिँ दिखाये ?  
च्यौ ब्रज महँ रहिँ लौटि यशोदागन्दन आवे ?  
ब्रज मथुरा अरु द्वारका, महँ जो लीला करी हरि ।  
पावना परम प्रसन्न प्रभु ! मोहि सुनावहिँ छपा करि ॥

जीवन तो ससार में उनका ही धन्य है, जिनकी सधि निरन्तर  
भक्त और भगवान् को कथाओं के श्रवण में खनी रहती है ।  
धन्य कथायें सब निस्तार हैं । ससारी लोगों के सम्मुख तीन  
ही कथायें हैं कामिनी, काचन और कीर्ति । इन्हीं की प्राप्ति के  
लिये परनिन्दा, परस्तुति, राग द्वेष बलह, दम्भ, छल, कपट, हिंसा,

ॐ महाराज परीक्षित श्रीशुकदेवजी से कह रहे हैं—“प्रभो ! मैंने  
घन घोर जल का परित्याग कर दिया है, फिर भी मुझे यह डुस्सह  
खुपा पिपासा बाधा नहीं दे रही है । बारण नि घ्राणके मुल कमल से  
निकले हरिकथा रूप समुत्पला जो मैं पान कर रहा हूँ ।”



आत्सर्म, ईर्ष्या आदि में निमग्न बने रहते हैं। इसमें वे इस लोक को भी विगाड़ते हैं, परलोक को भी नष्ट करते हैं। उसने ऐसा किया, वह ऐसा है, वह वैसा है। इन कथाओं में क्या सार है ? इनके श्रवण से चित्त में ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ आदि दुष्ट गुण ही आते हैं। जिनका चित्त भक्त भोग भगवान् के चिन्मय चरित्रों के चिन्तन में ही निमग्न रहता है, जिनके वर्णकुहर कभी दृष्ट-कथा-श्रवण से भरत नहीं, जिनकी यादों वनवारी की विरुदा-वली गात-गाते चकती नहीं, उन्हींमें अपने दोनों लोकों को बना लिया। वे इस लोक में पर-चर्चा करी वाचस्मि से उचकर मुख का अनुभव करते हैं और परलोक में जाकर प्रभु के नित्य पापद्वन्द्व जात हैं। भागवती कथाओं के श्रवण में खचि साधन स नहीं होती, भ्राश्य से होती है, भगवान् की कृपा से ही होती है।

सूतजी कहते हैं—‘सुनिधो ! जब भगवान् शुक ने राजा परीक्षित से प्रश्न करने की बड़ा और कुछ जलपान करने की भी सम्मति दी तब हाथ जोड़कर बड़ी सज्जता से महाराज परीक्षित कहते लगे—‘भगवन् ! आज चार दिन से मैं आपके श्रीमुख से हरि कथा-रूप अमृत-पान का पान करके सभी सामरिक घर्षों को भूल गया हूँ। प्रभो ! यह हरिकथामृत तो दिव्य अप्राकृत रस है। इसके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ! लोग प्राकृत विषयों में इतने तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें शरीर की सब सुखसुव भूल जाती है। घर में बैठा बैठे या विवाह हो, तो लोग रात्रि-दिन एक कर देते हैं, न उन्हें भोजन की सुधि रहती है, न शयन की। लोग किसी कण्ठप्रिय राग को सुनकर ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि खाना पीना सब भूल जाते हैं। मनुष्यों की तो बात ही क्या, हरिण, सर्प जैसे पशु गायन सुनकर तन्मय हो जाते हैं। अधिक उन्हें उसी तन्मयता की अवस्था से मार देते हैं। जार पुरुष अपनी

प्रियतमा के प्रेम में इतने आत्म-विस्मृत हो जाते हैं कि उन्हें अपने प्राणों का भी मोह नहीं रहता। कोई पुरुष अपनी प्रियतमा को अत्यधिक प्यार करता था। उसकी पत्नी अपने पिता के घर गई थी। उसके पिता का घर सरिता के उस पार था। रात्रि में उससे नहीं रहा गया। भादों की मही नदी प्रबल वेग से बह रही थी, उसी में वह कूद पड़ा और एक शव के सहारे उस पार पहुँचा। ससुराल में जाकर ऊपर देखा कि एक सर्प लटक रहा है। उसे ही पकड़कर वह ऊपर छन पर चढ़ गया। भगवन् ! जब ससारी विषयों में इतनी तन्मयता है, इतनी आत्मनिश्चयिता है, तो आप तो अप्राकृतिक रूप पान कर रहे हैं। ऐसी ही एक कथा किसी नायिका की है। वर्षा की अन्धेरी में अर्धरात्रि के समय किसी घोर वन में वह अपने जार पति से मिलने जा रही थी। मार्ग में उसे योगाभ्यास करते हुए एक महात्मा मिले। वे शवासन पर लेटकर ध्यान कर रहे थे। वह खी उनकी छाती पर पर रख कर निकल गई। मुनि को बड़ा क्रोध आया। वे स्पर्श से ही समझ गये, किसी खा का पैर है। क्रोध में भरकर उन्होंने उस पर एक डण्डा जमा दिया। उसने फिर कर साधु को देवा भी नहीं, अपने उपपत्ति के समीप चली गई।

कुछ काल में वह उनसे मिलकर, कुछ रात्रि शीव रहने पर, उसी मार्ग में लौट कर आई। साधु ने कहा—“क्यों रो दुष्टे ! तू मेरी छाती पर पर रख कर निकल गई थी ?”

हाथ जोड़कर वह बोली—“भगवन् ! मुझे तो स्मरण भी नहीं। जब की बात आप कह रहे हैं ?”

जुद्ध होकर मुनि बोली—“यद्यपि बात वनाती है ? तुम्हें इसना भी पता नहीं ? मैं तो तुम्हें एक डण्डा बस कर मारा था।”

उस खा ने कहा—“नहीं, मैं शत्रु कहती हूँ भगवन् ! मुझे

कुछ भी पता नहीं, अब मैं आपके ऊपर होकर गई और अब आपने मुझे डण्डा मारा।”

इस पर साधु बोले—“हाँ, तुम्हें क्या पता होगा ? तू तो मतवाली हो रही थी। स्वर्णिमों कहीं को।”

स्त्री बोली—“महाराज ! अपराध क्षमा हो, आप जिसके प्रेम में मग्न होकर ध्यान कर रहे थे, उससे तो बदर मेरा ही प्रेम था। मुझे तो अभी तक पता नहीं, कब मैं आपके ऊपर से निकली, अब आपने मुझे डंडा मारा। आपका प्रेम बनावटी है।” साधु यह सुनकर लज्जित हुए और उन्होंने स्वीकार किया, मेरा मन आपन प्रेमी में नहीं लगा था।

महाराज परीक्षित कह रहे हैं—“प्रभो ! जब ससार में लोगो को अनुश्रुत विषय सुख पाकर देहानुसंधान नहीं रहता, तब मुझे तो आप दिव्यमतिदिव्य मधुरातिमधुर ममृत पिला रहे हैं, जिसमें शरीर-धर्मों का कोई अर्थ नहीं। सगरी छे-पुरुष जब बैठकर सम्पूर्ण राशि प्रेम की बातें कहते बहुत बिता देते हैं और पलभर भी नहीं सोत, तब आप तो परमपुरुष की कथा सुना मेरे कर्ण-कुहरो में उड़ते रहते हैं। आपने जो क्षुधा पिपासा को दुहसह बताया, उसे मैं स्वीकार करता हूँ, किन्तु इस समय कृष्ण कथा सुनते-सुनते मैंने भूख-प्यास का कुछ भी बल नहीं है। कृपा करके आप मेरी शकाओं का समाधान करें, मेरे प्रश्नों का उत्तर दें।”

यह सुनकर प्रपन्नता प्रकट करते हुए श्रीशुकदेवजी बोले—  
“अच्छी बात है राजन् ! प्रिय आपकी क्या प्रश्न है। कौन कौन सी आपकी शकाय हैं ?”

महाराज परीक्षित ने कहा— महाराज सर्वप्रथम तो मुझे यही शका है कि शूर वश का वर्णन करते हुए आपन वसुदेवजी

की वेईस पद्वियो के तथा उनकी सन्तानो के नाम गिनाये। उनमें रोहिणीजी के पुत्रा में भी बलरामजी की गणना की और देउकी के पुत्रा में भी उन्हें मानवा पुत्र बताया। एक ही बलराम जी, एका शरीर में दा मानास्य र उदर से कैसे उत्पन्न हुए? यदि दूम्ने जन्म को बात होनी या दो देह रख लेते, तब तो यह समझ भी था। वे एक देह से एक माय दो मातृओं के उदर में कैसे रहें? मेरी एक तो यह शका है। दूसरी यह है, कि जब श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् थे, तब व अपने पिता के घर को छोड़कर छिपकर जाकर व्रज में क्या बने? क्यों उन्होंने माता-पिता का परित्याग किया?

इन शकाया के अतिरिक्त श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् के सभी चरित्रों को सुनाइये। उन यादवेन्द्र न अपने बन्धुमा तथा कुल के लोगों के सहित कहीं-कहीं निवास किया? भगवान् ने व्रज में रहकर मोष्ट में, वनों में तथा निकुञ्जों में कौन-कौन सी लीलाएँ की? वे व्रज में पुनः मथुराजी क्यों गये? वहाँ उन्होंने क्या-क्या किया? कस तो उनके मामा थे, न मारने योग्य अपने मामा को उन्होंने क्यों मारा? आप ही सोच, अपने माता का भाई कैसा भी क्यों न हो, उनका भानजे के द्वारा वध क्या उचित कह जा सकता है? भानजा तो मामा को पिता से भी अधिक प्यार करता है, मामा को देखकर उछल पड़ता है। पिता तो कभी पुत्र को मार भी देता है, किन्तु मामा तो भानजे को चाहिये, उसमें चर न जाय। उसे मारना तो पितृ-वध के समान है। मामा को माघव ने क्यों मारा, इसका कारण बताकर यह भी बताइए कि मथुरा में रहकर उन्होंने और कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं। मथुरा का परित्याग करके वे द्वारका क्यों गये? अरासन्धः

अस से भागकर उन्होंने साधारण मानवीय लीला क्यों की ? वे समुद्र-देह धारण करके यादों के साथ बितने दिनों तक द्वारा-वती में रहे ? द्वारकापुरी में रहकर उन्होंने कौन-कौन सी लीलायें की ? उनके कितनी परित्याग, कितने पुत्र हुए ? इन सब बातों को आप विस्तार में सुनाने की कृपा करें।”

शुक्रदेवजी बोले—“राजन् ! आपने तो एव साध ही इतने प्रश्न कर डाले। मैं तो इतने प्रश्नों को भूल भी जा सकता हूँ। फिर इन सब बातों का यथाथ उत्तर मैं कैसे दे सकता हूँ ? ये सब भगवान् की भूतकाल की लीलायें हैं।”

इस पर हँसते हुए राजा बोले—“भगवन् ! आप मुझे बहुकावे नहीं। भगवान् की लीलाओं में कभी भूत भविष्य, का भेद भाव होता है क्या ? ये लीलायें तो नित्य है सदा सर्वदा होती ही रहती हैं। हम अल्पज प्राणी उन्हें इन चर्म-चक्षुओं से कैसे ही न देख सकें, किन्तु प्रभो ! आप तो सर्वज्ञ हैं, सबविद् हैं त्रिकालदर्शी हैं। आपसे सम्मुख तो सभी घटनायें हाथ में रखे आँखों के सदृश प्रत्यक्ष हैं। ऐसी कौन-सी बात है, जो आपसे छिपी हो ? मैंने जो इतने प्रश्न किये हैं, उससे आप यह न समझ लें कि इतने ही प्रश्नों का उत्तर देना है। यह तो मैंने केवल संकेत साव कर दिया है। जो बात मैंने न पूछी हो, उसे भी कहें, जिन-जिन लीलाओं का आप उचित समझें, उन्हें भी कहें। भगवान् की तो सभी लीलायें उचित ही हैं। उन सब का पार कोई पा नहीं सरता, मेरे जीवन की अवधि को दृष्टि में रखकर, फिर आप मेरी योग्यता देखकर, सभी लीलाओं का विस्तारपूर्वक बयान करें।”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! जब महाराज परोक्षित ने मेरे शुक्रदेव के सम्मुख अत्यन्त भक्तिभाव तथा श्रद्धा-सहित ये प्रश्न

किये, तब भगवतरस के सर्वश्रेष्ठ रसिक परम भागवत भगवान्  
शुक्रने दुराज्ञा की प्रशंसा की, उनके प्रश्नों की सराहना की,  
तदन्तर-स्वस्थ चित्त होकर गद्गद, कठ से, प्रेमाश्रुओं से अपने  
गोल-गोल कपोलों को भिगोते हुए, कलि के कर्मपाँ की काटने  
वाले कृष्ण चरित्रों का वर्णन करने के लिये उद्यत हुए।”

#### छप्पय

सुनत परीक्षित प्ररन महासुनि शुक्र हरषाये ।  
तनु अति पुलकित भयो अश्रु नयननि महँ छाये ॥  
अति उत्कण्ठित चित्त तृपति की करे प्रशंसा ।  
धन्य-धन्य अभिमन्यु-तनय कुरु कुल अवतंसा ॥  
सफल जनम भूपति भयो, कृष्ण-चरग मह भई रति ।  
अन्त समय हरिकथा महँ, उभयो अस अनुराग अति ॥



## श्रीशुक द्वारा परीक्षित-प्रश्नों की प्रशंसा

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषस्त्रिंशत् प्रश्नाति हि ।  
वक्तारं पृच्छकं श्रीतुंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ॐ॥  
(श्री भा० १० स्क० १ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

राजन् ! हरि की कथा गङ्गा-सम सब कूँ तारे ।  
जो पृछे जो सुने प्रेम तो जो उच्चारें ॥  
मन्वन दरशय परशु बालु मिट्टी अथवा जल ।  
नाम, श्रवण-गण-कथन सबहि नेटे मन के मल ॥  
अथवा नियमित देश महँ, ही श्री गङ्गाजी बहहि ।  
किन्तु कथा मन्दाकिनी, नर सबई थल पै लहहि ॥

सुख दुख सम्बन्ध स होता है । जो जितन ही महान होंगे,  
उनके सम्बन्ध से उतना ही महता होगी, अतः महत्पुरुषों से कैसे  
भी सम्बन्ध क्यों न हो जाय, उसका परिणाम सुख ही होगा ।  
जिसके चारों ओर से सुगन्धित द्रव्य लगे हैं, वह जहाँ बैठ जाय, वहाँ  
के लोगों की दुःख न होने पर भी उन्हें सुगन्धि प्राप्त होगी । यद्यपि  
को दुःखान् के सम्मुख होकर निकलने पर ही सुगन्धि आ जायगी ।  
भगवान् के कीर्तन जहाँ हो रहा हो, वहाँ जाने से, दूर से सुनने

ॐ "श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् वासुदेव की कथा का  
'प्रदान', कहने वाले, पढ़ने वाले और सुनने वाले— इन तीनों को पवित्र  
भरता है, जैसे भगवान् का पादोदक गङ्गा-जल समस्त पुरुषों को  
'पवित्र' कर देता है ।"

अथवा अनुकरण करने से भी जिस प्रकार कल्याण हो होता है, उसी प्रकार कृष्ण कथा से कैसे भी, किसी प्रकार भी, प्राणी का सम्बन्ध हो जाय, तो वह तर हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो! जब महाराज परीक्षित ने श्री गुरुदेव जी से भगवान् की कथा के सम्बन्ध में ऐसे प्रश्न किये, तब उनकी प्रशंसा करते हुए श्रीगुरुजी बोले—“हे राजपुत्र! तुम धन्य हो, तुम्हारे माता-पिता धन्य हुए, तुम्हारा पावन कुल आज परम पावन हुआ, जिसमें तुम्हारे जैसे भगवद्भक्त पुरुष उत्पन्न हुए। राजन्! जो बुद्धि वनवारी के विषय में विचार करती है, वही बुद्धि श्रेष्ठ है। वही वास्तव में बुद्धिमान व्यक्ति है, जिसने कृष्ण कथा श्रवण करने का निश्चय कर लिया हो। गुरुजी के समय अव्यस्त भाग्यशाली पुरुषों की ही श्रीकृष्ण कथा में अतिरिक्ति होती है। अपने भगवान् की कथा का प्रश्न करके अपने को ही पावन नहीं बनाया, मुझे भी पावन बना दिया। इन सुनने वाले ममस्त श्रोताओं को भी छतकृत्य कर दिया। जैसे जाड़े में एक ही आदमी ईंधन लाकर अग्नि को जलाता है, एक के जलाने से आस-पास के सभी लोगों का शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे भगवान् की कथा-सम्बन्धी प्रश्न करने से सुनने वाले, कहने वाले और सुनाने वाले—“सभी तर जाते हैं, जैसे भगवान् के चरणों का जल तीनों की तारता है।”

इस पर सौनरजी ने पूछा—“सूतजी भगवान् के चरण का जल, तीनों में किसको तारता है, इस स्पष्ट करें।”

सूतजी बोले—“महाराज! मेरे गुरुदेव कहीं-कहीं ऐसी सूक्ष्म बात यह देते हैं कि उसकी व्याख्या करें, तो बाहे जितने अर्थ लगा लो, फिर भी यह नहीं कह सकते, इसका यही अभिप्राय



है। उन्होंने इतना ही कहा कि भगवान् की कथा-वार्ता वक्ता, श्रोता और प्रश्नकर्ता—तीनों को ही पवित्र कर देती है, जैसे भगवान् का चरखोदक। अब भगवान् का चरखोदक एक तो माक्षात् गङ्गाजी ही है, दूसरा शालग्राम आदि के भगवद्-विग्रह स्नान कराने से जो तीर्थ होता है, वह भी चरखोदक होता है। ये दोनों ही तीनों को तार देते हैं। इन तीनों के बहुत अर्थ हैं।"

शौनकजी बोले—'कुछ ही सुनाइये सूतजी! कथा की ओर गङ्गाजल की उपमा तो अगूठी है। कथा के विषय में तो समझ लिया कि श्रोता, वक्ता और प्रश्नकर्ता—इन तीनों को तारती है। अब गंगाजी के सम्बन्ध में सुनाइये, ये किन्हीं तारती हैं।'

सूतजी बोले—'सुनिये महाराज! गंगाजी ने तीनों को तारे दिया। कमण्डलु में रखने वाले ब्रह्माजी को, मिर पर चारण करने वाले शिवजी को और पृथ्वी पर लाने वाले भगीरथजी को, अथवा पृथ्वी, पाताल तथा स्वर्ग—तीनों लोकों को उन्होंने अपनी तीन घाराओं से तार दिया। अथवा अन्हू के कुल को, भगीरथ के कुल को और हिमालय के कुल को—इन तीनों कुलों को तार दिया, अथवा महाराज प्रद्योत को, शम्भु को और भीष्म को—इन तीनों को तार दिया, अथवा गंगाजी स्नान करने वाले, दर्शन करने वाले तथा आचमन करने वाले—तीनों को ही तार देती है। अथवा दूरसे गंगा-गंगा कीर्तन करने वाले, गङ्गाजी को जायेंगे, ऐसे ध्यान करने वाले और मरने पर हड्डी पड़ने वाले, गंगाजी तक आने में असमर्थ लोगों को भी गंगा तार देती है। अथवा गंगाजी के किनारे रहने वाले उन्हीं का जल पान करने वाले, उन्हीं के तट पर जीवन भर रहकर मरने वालों को तार देती हैं। अथवा गङ्गाजी में स्नान करने वालों के मातृकुल, पितृकुल तथा अपने निज कुल के तीनों बंधों को गंगा तार देती है। अथवा गंगाजी सार्वत्रिक प्रकृति

वाले, रजोगुण और तमोगुण प्रकृति वाले—सभी प्रकार के लोगों को तार देती है, अथवा स्नान करने वाले के तीनों गुणों को नष्ट कर के उसे निष्क्रेण्य बना देती है। अथवा गङ्गाजी स्त्री, पुरुष, नपुंसक—प्राणी को परमपद तक पहुँचा देती है। अथवा भगवान् का चरणोदर स्नान कराने वाले, करने वाले और उसका पान करने वाले—तीनों को पवित्र बनाता है। अब कहाँ तक अर्थ कहें। आप सक्षेप में यही समझें कि गङ्गाजी का जिस प्रकार भी सम्बन्ध हो जाय, साक्षात् न हो, परम्परा से हो जाय, तो भी वह प्राणियों को पवित्र करती है। जो गङ्गाजी के किनारे रहते हैं, गङ्गा स्नान करते हैं, उनके पुण्यों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ! जो दूर से गङ्गा-गङ्गा नाम लेते हैं, वे भी तप जाते हैं। इस विषय के पुराणों में अनेक दृष्टान्त हैं, उनमें से कुछ मैं यहाँ बताता हूँ। इससे आप समझेंगे कि विष्णु-पादोदक की कितनी महिमा है।

एक राजा थे अत्यन्त ही क्रूर, दुराचारी, सभी पापी और नीच प्रकृति के। वैसी ही उनकी रानी थी। मरने पर यम के दूत उन्हें यमराज के यहाँ ले गये। यमराज ने अपने लिखिया चित्रगुप्त को बुलाकर पूछा—‘इनका कोई पुण्य है ?’ लिखिया महाशय ने अपनी बहुत सी बहियों को उलट-पुलट कर देखा और कहा—‘प्रभो ! इन्होंने तो जीवन-भर पाप ही पाप किया है। कभी गङ्गाजी के दर्शन भी नहीं किये।’ यमराज ने क्रोध में भरकर कहा—‘इन्हें नरको में डाख दो।’

यमराज की आज्ञा पाकर वे नरको में पचते रहे। अन्त में राजा मेढक हुए और रानी मेढकी। किसी पुण्य के प्रभाव से उन्हें पुरानी सभी बातें स्मरण बनी रहीं। किसी सन्त से उन्होंने गङ्गाजी की महिमा सुनी। दोनों ने बड़े उत्साह से

‘निश्चय किया कि “हम गङ्गाजी चले गे।” ऐसा निश्चय करके वे चल दिये। उनके मार्ग में एक सर्प देखता मिले। वे दोनों की खा गये। मरते समय उन्होंने गंगा-गंगा कहा। इसी से वे स्वर्ग गये। वहाँ स्वर्ग के सुखों को भोगते हुए अन्त में वे वैकुण्ठलोक में चले गये। यह तो गंगाजी के नाम स्मरण का माहात्म्य हुआ।

अब गंगाजल के स्पर्श का भी माहात्म्य सुनिये। एक बड़ा ही दुराचारी क्रूर ब्राह्मण था। वह ससार में जितने पाप कर्म हैं, सभी को करता था। अन्त में उस दुष्ट को किसी ने मार डाला। मरकर वह विन्ध्य पर्वत के समीप भूत हो गया। वह भूल प्यास से दुखी होकर एक क्षमी वृक्ष पर रहने लगा। एक दिन एक सदाचारी ब्राह्मण तीर्थराज प्रयाग से स्नान करके जा रहा था। देवयोग से वह थक कर उस क्षमी वृक्ष के नाचे बैठ गया। भूत भूल-प्यास से दुखी होकर रोने लगा। ब्राह्मण ने समझ लिया, यह कोई दुष्कृत पुरुष है, अपने पापकर्मों से यह भूत हो गया है। उसकी ऐसी दयनीय दशा देखकर उन्हे उस पर दया आ गई। उनके पास काबर में गंगाजल था। उन्होंने गंगाजल लेकर उसके ऊपर छिड़क दिया। गंगाजल के स्पर्श होते ही वह तुरन्त प्रेतमोनि से छूट गया। उसी समय स्वर्ग में विमान आया और वह दिव्य रूप रखकर ब्राह्मण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके स्वर्गलाक को चला गया। बहुत दिनों तक स्वर्गीय भोग भोगकर वह एक सदाचारी ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुआ। उसे गंगा जी की महिमा स्मरण था। अतः वह धर छोड़कर गंगाजी के किनारे आकर बस गया और वही भगवान् का भजन करता हुआ, अन्त में वैकुण्ठवासी हुआ। यह गंगा जल के स्पर्श का माहात्म्य हुआ। अब गंगाजी के स्नान का माहात्म्य सुनिये।

दक्षिण देश में एक बहुत ही रूपवती वेदया थी। उसने बड़े-

बड़े घनिकों के पुत्रों को भ्रष्ट किया था। रात्रि-दिन व्यभिचार मुरापात और मांस आदि के भक्षण में ही उसका समय व्यतीत होता था। एक बार उसे बड़े बेंग से उबर आया। उसके शरीर में फोड़े हो गये। पकी हुई देह से दुर्गन्ध आने लगी, नोकर-चाकर धन लेकर भाग गये। जो उसके रूप पर मरते थे, वे अब उसके पास भी नहीं फटकते थे। उसे कोई पानी देने वाला भी नहीं था। अत्यन्त दुःख में वह तड़प रहा था। उसी समय कोई दयालु मुनि उसके समीप आये और बोले—“तू गंगा-गंगा कह। तू ही तो वह थी ही गंगा गंगा कहने लगी। गंगाजी की कृपा से उसका दुःख दूर होने लगा। उसे कुछ चेत हुआ। अब वह चलने योग्य हुई, तो शनैः-शनैः अपना घर छोड़कर चल दी। लोग पूछते ‘कहाँ जा रही हो?’ वह रोकर बहती, मैं गंगाजी जा रही हूँ।’ अब उसका शरीर अच्छा हो गया। मार्ग में जो भी कुछ मिल जाता उसे वह खा लती। कुछ न मिलता तो वह भस्मी हो रह जाती। इस प्रकार गंगा जी के नाम का कीर्तन करती हुई वह बहुत दिनों में प्रयागराज आ पहुँची। आकर उसने भक्ति भाव से त्रिवेणी में स्नान किया। स्नान करते ही गंगा जी ने उसका शरीर छूट गया। तुरन्त ही विमान प्राया और वह ब्रह्मलोक में जाकर दिव्य शप्सरा हो गई। यह गंगा स्नान का फल था। अब गंगाजी में अस्थि पडने का जो माहात्म्य है, उसे श्रवण कीजिये।

स्वर्ग में एक पद्मगन्धा नामकी बड़ी ही सुन्दरी अप्सरा थी। उसे अपने रूप मोचन का अत्यन्त ही गर्व था। वह बड़ी मानिनी, गतिप्रिया और मोहन थी। इन्द्र उसके ऊपर अत्यधिक अनुरक्त था। एक दिन इन्द्र एकांत में उसके साथ था। उसी समय सोलहो शृंगार करके इन्द्रणी उसी वहाँ आई। वे देखकर मोचनी रह

गई । तीनों लोको के राजा समस्त देवताओं के स्वामी शत-  
मनु इन्द्र उस पद्मगन्धा अम्बरा के चरणों में बैठे उनके तलवों  
का सुहृता रहे हैं और उन स्वर्ण के पाशों में लपेटे पान खिला  
रहे हैं । यह दम्बर दासी ने अपने पति दम्बेन्द्र को घुड़गा और  
कहा—‘प्राणनाथ ! आप तीनों लोको के स्वामी हूँ और भी यह  
वस्त्र अम्बाय कर रहे हैं । बड़े बड़े देवता श्रृंगि महीषि भाकर,  
आपके चरणों में अपना सिर रखते हैं । आप इन धुद्र सप्परा की  
चरण सेवा कर रहे हैं । यह बहुत ही अनुचित बात है । इस कुलटा  
का लज्जा भा नहीं आती, जा आप स ऐसा सेवा ल रही है । इस  
कुलटा को अपने रूप-योधन का बड़ा गव है । यह दासी होकर  
भी मरा श्रेया पर ध्यान कर रही है ।’

यह सुनकर पद्मगन्धा के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा । वह  
दासी को भिडककर सिन्धु की तरफ गजरकर बोली—‘बल,  
हट । भाई कहीं को स्वामिनी बनकर । तू भी दम्बेन्द्र की दासा  
है, मैं भी हूँ । मुझमें और तुझमें क्या अन्तर ? तूने कुछ महाराज  
को माल तो ली नहीं लिया है ? वे मुझमें प्यार करते हैं  
तो तरे हृदय में क्यों मूल चुभते हैं ? तू ईर्ष्या का कारण क्यों मरो  
जाती है ? तरे चरणों में अभिन क्यों लग रही है ? मुझ में  
सुरेन्द्र प्यार करते हैं, मैं उनसे चाहें जो करारों । तुझे मैंने मना  
तो किया ही नहीं तू भी करा सकती हो, तो करा । मैं लक्ष्मी-वत्सा  
की दासे नहीं जानती । यदि तू ही महाराज पर अपना अधिकार  
समझती है, तो ले मैं चली ।’ यह कहकर वह कूट सपिणों के  
समान फुफकार छोड़ती हुई वहाँ से जाने लगी । दम्बेन्द्र ता  
उसके अधीन हो गये थे, वे तो पल भर भी उसका वियोग नहीं  
सह सकते थे, अतः उन्होंने दीडकर पद्मगन्धा के पैर पकड़ लिये  
। और दीनना दिखाते हुए बोले—‘प्राणेश्वरी ! तुम उसकी बातों

पर ध्यान न दो, मुक्त दीन हीन की ओर निहारो। मैंने तो तुम्हारे प्रति कोई अपराध नहीं किया। मैं शची को अभी निकालता हूँ, तुम शयनागार से बाहर मत जाओ।” यह कहकर इन्द्र उसकी गाना प्रकार की अनुनय-विनय करने लगे और जैसे जैसे उसे मनाकर लौटा लाये।

शची रानी यह सब दृश्य देख रही थी। उन्होंने व्यङ्ग्य के स्वर में कहा—“अरे, पापिनी कौची! और तू भोग ले कुछ दिन इस सोभाग्य की। अन्त में तो तेरा पतन अनिवार्य ही है।” यह कह कर शची लौटकर अपने महलों में चली गई।

यह बात सुनकर पद्मगन्धा को बड़ी चिन्ता हुई। उसका समस्त रूप-योगन का मद उतर गया, ईर्ष्या जाती रही। देवेन्द्र से आज्ञा लेकर वह अकेले ही शची के महलों में गई और उनके पैर पकड़कर बोली—“जिजी! तुम कृपा करके मुझे यह बताओ कि तुमने मुझे कौची क्यों कहा।

यह सुनकर शची रानी का भी क्रोध जाता रहा। वह बोली—“बहन! यहाँ की हम सभी अप्सरायें किसी बड़े पुण्य के कारण ही पृथ्वी से आकर स्वर्ग में देवाङ्गनायें बनी हैं। तू पूर्व जन्म में एक कौच पक्षी की स्त्री कौची थी, मसि खाती थी और वृक्ष कोटर में निवास करती थी। एक महत्पुण्य के प्रभाव से तुझे यह सोभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसमें तेरे रूप पर मुख ही कर देवेन्द्र भेरा भी तिरस्कार करते हैं।”

पद्मगन्धा बोली—“जिजी! मैं किस पुण्य के प्रभाव से इतनी सुन्दरी अप्सरा हुई हूँ, कृपा करके मुझे बता दें।”

शची बोली—“तेरा इतना ही पुण्य है, कि जिस वृक्ष के कोटर में रहती थी, वह गंगा तट पर था। गंगाजी की पवित्र चामु तुझे लगती थी, वह गंगाजल का पान करती थी। एक दिन

एक सर्प तेरे कोटर में घुस आया। उसने तुझे डँस लिया, तेरे मांस को खा गया। पतली-पतली हड्डियाँ तेरी गगाजी में गिर गईं। वे पक्षी की पतली हड्डियाँ जब तक गगाजी में रहेगी, तब तक तू स्वर्ग में ऐसा ही ऐश्वर्य भोगेगी। जहाँ वे गल गईं, कि फिर तू मर्त्यलोक में चली जायगी। अब वे तेरी हड्डियाँ गलने ही वाली हैं।'

यह सुनकर पद्मगन्धा को बड़ा सोच हुआ। उसने कुछ कहा नहीं। यह अन्वयममग्न भाव से इन्द्र के साथ रमण करने लगी। एक दिन देवेन्द्र ने कहा—'प्रिये! आजकल तुम बड़ी उदास रहती हो, मुझे इसका कारण बताओ।'

उसने कहा—'कुछ नहीं, बैसे ही मेरा मन ऐसा हो गया है।' देवेन्द्र ने कहा—'देखो मैं तुम्हारे मुख कमल को स्थान देलगा नहीं चाहता। तुम जो भी चाहोगी, वही मैं तुम्हें दूँगा। तुम मुझ पर इच्छानुसार वरदान माँग लो।'

पद्मगन्धा ने कहा—'सत्य कहते हो पीछे नटोने तो नहीं?' यह सुनकर इन्द्र ने तीन बार कहा—'सत्य कहता हूँ सत्य कहता हूँ। पुनः पुनः सत्य कहता हूँ। तुम मुझमें जो भी माँगोगी वही तुम्हें मैं दूँगा।'

पद्मगन्धा ने कहा—'अच्छा यदि घाप प्रसन्न है, तो अवके मेरा जन्म पुष्टी पर गया—किनारे हयिनी का हो।'

देवेन्द्र ने कहा—'यह तुमने क्या वरदान माँगा? मैं तो तुम्हारे बिना चलकर भी नहीं रह सकता।'

पद्मगन्धा ने कहा—'देव! मुझे कुछ दिन हयिनी-योनि में रहने दीजिये, पुनः मैं आकर आपकी जसे अवस्था करवाऊँगी। मैंने हयिनी-योनि क्यों माँगी इसका पीछे बताऊँगी।'

जैसे जैसे देवेन्द्र ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। वह गंगा किनारे बड़े डोलडोल की हथिनी हुई। हथिनी होकर भी उसे स्वर्ग की वे सप्त बरति याद थी। मन वह अपने शरीर पर यथेष्ट गंगाजी की बीच लपेटती। गंगाजी की बीच मन की बीच की घा देती है। उसके पय का पान मातृ पय पान से पुथक कर देता है। गंगा का दर्शन धसार का दर्शन हटा देता है। उसमें भीतर बुझरी मारने से ससार में अधोगति नहीं होती।

कुछ दिनों के पश्चात् हथिनी आहार छोड़ दिया, वह गंगा जी में खड़ी होकर उपवास करने लगी। उपवास करते करते वह अत्यन्त कुम हो गई और अन्न में गंगाजी के बीच ही मर गई। उस लोने स्वयं देवेन्द्र आये और वह पहले से भी सहस्रो गुनी सुन्दरी हो गई। तब एक दिन प्यार से देवेन्द्र ने पूछा— 'तुमने मुझ हथिनी की योनि क्यों मारी ?'

इस पर वह अम्सरा बोली— 'प्रभो ! जब इच्छा न रहने पर स्वाभाविक पक्षी की हड्डि गंगाजी से पड़ने पर मुझे इतना सोभाग्य प्राप्त हुआ था तब इच्छा पूर्वक हड्डि पड़ने पर न जाने कितना सोभाग्य प्राप्त हो। पक्षी की हड्डि तो कुछ दिनों नष्ट हो जाती है किन्तु हथिनी की हड्डि तो चिरकाल तक रहेगी। तब तब मैं आपके माय आनन्द-विहार करती रहूँगी। अतः अपने पुण्य को सोभाग्य को, स्याई बनाने के लिये मैं हथिनी की योनि मारी थी।'

यह सुनकर देवेन्द्र परम प्रसन्न हुए, उस दिन से वे गंगा-गंगाजी की महिमा को भलो भाँति समझने लगे। यह मैंने गंगा जी में हड्डि पड़ने का साहाय्य बताया। अब आप विष्णु-चरणोदर का माहात्म्य श्रवण कर।

एक बड़ा ही हिसक, झूट, परधन लोभो आह्वान गृध्वी पर



मरने पर जब उसे पकड़कर यमदूत समयनी-पति यम के समीप लगे गये, तब यमराज ने नियमानुसार चित्रगुप्तजी को बुलाया और उनसे इस ब्राह्मण के पुण्य पाप का लेखा पूछा।

चित्रगुप्तजी ने तुरन्त वर्णों के क्रम से लगे हुए इसके खाते को खोला और उलट-पुलट कर बोले—‘प्रभो ! इसने तो पाप ही पाप किया है, पुण्य तो इतना अणुमात्र भी नहीं है।’

तब यमराज ने कहा—‘अच्छी बात है, इस शेरवादि नरको की यातना दो।’

यमराज की आज्ञा से उन अनेक नरकों में पकाया गया। जब उसके कुछ पाप शेष रह गये, तब उसे पृथ्वी पर काक योनि में डाल दिया गया। काक होकर वह अखाद्य वस्तुओं को खाता हुआ अपनी आयु के दिन बिताने लगा। एक दिन वह उड़ता हुआ भगवान् 'क' मन्दिर के ऊपर चला गया। उसे बहुत प्यास लग रही थी। तुलसीजी के धामरे पर भगवान् का चरणामृत रखा था। कोश आकर तुलसा-चबूतरे पर बैठ गया और उस सम्पूर्ण चरणामृत को पी गया। चरणामृत के पान करते ही उसके प्राण वैसे उड़ गये। उस समय स्वर्ग से विमान आया और हँस देवता बनकर स्वर्ग को चला गया।

सूतजी कहते हैं—‘मुनियो ! भगवान् के चरणामृत का— गगाजल का कहीं तक साहाय्य बतलाऊँ। गगाजल मरु-सम्य प्राणियों के मुख में पड़ जाय, तो पापी भी पावन हो जाते हैं। गगाजी के तट पर रहकर भी जो अम्य जल का दण्ड खाते हैं, उससे असाग ससार में कौन होगा ? मरु-सम्य रहने भी जिसका शरीर अम्य दमशान में खण्डित हो, उसका बदन उसका दुर्भाग्य क्या होगा ? गगाजल मरु-सम्य भी मरु-सम्य अम्य उपलेप लगाता है, उन्हीं बदन शरीरों में कौन रहे ?’

गंगाजी नहाने वालों को तो पवित्र करती ही हैं, नहाने वालों के ससगियों को भी पवित्र कर देती हैं। मेरे गुरुदेव ने भगवत्-कथा को गंगाजल की उपमा देकर एक अत्यन्त ही साहित्यिक चमत्कार दिखाया है। जलरूपी गंगा से बढ़कर यह कथा-रूपी गंगा है क्योंकि गंगा तो एक सीमित देश में ही रहती है, किन्तु, कृष्ण कथा रूपी गंगा तो सर्वत्र सुलभ है, जहाँ चाहे, वही इन्हीं प्रकट कर सकते हैं। इस प्रकार राजा के प्रदोषों की प्रशंसा सुनकर मेरे गुरुदेव ने जिस प्रकार भगवान् के अवतार का कारण बताया, उस कथा को मैं आपको आगे सुनाता हूँ, आप सावधान होकर उसे श्रवण करें।"

#### छप्पय

अब सुप ! उत्तर देहूँ करे जो प्रश्न जगतहित ।  
प्रभु अवतार-निमित्त कहूँ चित करहु समाहित ॥  
बादे भू पे असुर वैष भूपति को धारे ।  
करे यथेच्छाचार साधु-गो-विप्रनि -मारे ॥  
प्रकटे अगणित असुरगण, अचानि अधिक पीड़ित भई ।  
धेनु-रूप धरि दुखित है, अब चतुरांग दिग गई ॥



## भगवान् के अवतार के निमित्त

[ ८१६ ]

भूमिर्दत्तपुण्याजदैत्यानीकशताधुतैः ।  
आक्रान्ता भूरिभारेण प्राक्षणां शरणं ययौ ॥  
गौभूत्वाशुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुण निभोः ।  
उपस्थितान्तिके तस्मै ज्योत्सने स्वमवोचत ॥ॐ  
(श्री मा० १० स्क० १ अ० १७, १८ स्तो०)

छप्पय

अश्रु विमोचन करति दुःखित मन महँ पछितायति ।  
कमलासन ने लखी विकल भूदेवी आवति ।  
अज प्रनाम करि कहै मातु ! ज्यौ अश्रु बहाओ ।  
निज दुस कारण जगनि योह अविलम्ब चताओ ॥  
वसुधा बोली वत्स बहु, सोम बल्यो भारी भई ।  
सहशीलता रूप बने, असुरग मेरी हरि लई ॥

भगवान् के अवतार का कारण उनकी क्रीडा ही है। जब उन्हें अपने निज जनों को विभ-विभिन्न लीला दिखान की स्वयं

\* श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—'राजन् । जब राजाधियों के रूप में अनेक तन्मय दैत्यगण पृथ्वी पर व्येच्छ प्रत्याचार करने लगे, तब उनके भार से अत्यन्त पीड़ित होकर पृथ्वी गो रा रूप रखकर, जनों में अश्रु भरकर तथा खिन्न होकर कण्ठ स्वर में ज्वलन करती हुई ब्रह्माजी की ओर चली गई । वहाँ जाकर उसने उनकी अपने पश्टों की कहानी कह सुनी ॥

कुछ झूझल करने की इच्छा होती है, वे-अवनि पर अवतरित होते हैं। साधारण जीवों की तो शक्ति ही नहीं कि उनकी ओर आँखें भी उठाकर देख सकें; फिर उनके साथ विहार शय्या, आसन, भोजन, युद्धदि व्यापार कैसे कर सकते हैं? भग्न-वे अपने परिकर को भी साथ लाते हैं। ओड़ा करने के पूर्व-अवतरित होने के प्रथम-वे ऐसा वायु मण्डल उत्पन्न कर देते हैं कि सभी उन्हें पुकारन लगें, सभी आर्त होकर उनके अवतार की प्रार्थना करने लगें। वे अपनी माया-शक्ति की प्रेरणा से तमोगुण की अभिवृद्धि कर देते हैं, तम-प्रधान असुरों में प्रवेश करके उन्हें बूझाते हैं। इससे सत्त्व-प्रधान सुर घबड़ा जाते हैं, असुरों का बन बढ़ जाता है। प्रवल हुए असुर देवी-शक्ति को नष्ट करने लगते हैं। यदि वे विशुद्ध पापी ही हों, तब तो वे अपने पाप से ही नष्ट हो जायें, शाप से ही भस्म हो जायें, किन्तु वे क्रूर, हिंसक, बर्ग होने पर भी तपस्वी होते हैं, दानी तथा धर्माचरण करने वाले भी होते हैं। ऐसे लोगों पर ऋषि, मुनियों का, तज भी काम नहीं आता, उनके लिये तो सत्त्वभूति भगवान् की ही अवतरित होना पड़ता है। पहले वे तमोगुण में प्रवेश करके उसे बढ़ा रहे थे, अब सत्त्वभूति रखकर उसका नाश करते हैं। वे जब जैसा काल देखते हैं, तब तैसे ही गुण में प्रवेश करके उसे बढ़ा देते हैं। स्वयं ही वाध्य, स्वयं ही बाधक। इसे उनकी लीला के अतिरिक्त क्या कहें उसमें हेतु क्या बतावें? फिर भी किसी को निमित्त बनाकर ही वे ओड़ा करते हैं।

श्रीशुशेयभी राजा परोक्षित से कह रहे हैं-“राजन्! अब मैं आपके पावन प्रसी का यथामति उत्तर देता हूँ। सर्वप्रथम मैं यह बताऊँगा कि भगवान् ने अपने अवतरण के निमित्त कारण क्या बनाया था। पृथ्वी पर बहुत से असुर राजाओं के

रूप में उत्पन्न हो गये। वे बड़े बली थे। सब के सब ऐश्वर्य, बल, पराक्रम तथा तप के मद में उन्मत्त होकर महान् प्रत्याचार करने लगे। उनके भार में भू-देवी दब-सी गई। उस भार को उतारने के लिये अच्युत ध्वनि पर अवतरित हुए।”

इस पर शोनकजी ने पुछा—“सूतजी! भगवान् के अवतार का इतना ही छोटा-सा एक कारण है। सर्वशक्तिमान् भगवान् को इस तनित्र-सी बात के पीछे ही इस आधि-व्याधि, जरा तथा दुःखपूर्ण संसार में आना पड़ा। महाभाग! वे चाहते, तो अपने सकलपमात्र से असुरों का नाश कर देते, उन्हें उत्पन्न ही न होने देते। क्या किसी की उत्पत्ति भगवान् की इच्छा के बिना हो सकती है? यदि नहीं, तो असुरों को उन्होंने उत्पन्न ही क्यों होने दिया, जिन्हें मारने उन्हें तर-रूप धारण करना पड़ा? उन्हें मनुष्य बनकर मानवीय दुःखों को भी सहता पड़ा। इस विषय में हमें बड़ा संदेह है। इसका समाधान कीजिये, तब आगे की क्या कहिये।”

यह सुनकर सूतजी हँस पड़े और बोले—“भगवन्! आप तो ऐसे प्रश्न करते हैं, मानो कुछ जानते ही नहीं। महाराज! भगवान् के किसी भी चरित्र के सम्बन्ध में यद नहीं कहा जा सकता कि यह इसलिये ही हुआ। यही कहा जा सकता है, यह भी कारण हो सकता है। भगवान् के अवतार के अनेक कारण शास्त्रों में बताये हैं जय-विजय को जब सनकादि मुनियों ने शाप दिया, तब भगवान् ने कहा—“तीन जन्मों तक मैं तुमसे शीघ्र करूँगा। तीसरे श्रीकृष्ण-जन्म में मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा।” इसलिये उनके उद्धार के निमित्त भगवान् अवतरित हुए। कोई कहते हैं—“दण्डकारण्य के मुनि श्रीराम के अद्भुत रूपलाभय की देखकर विमोहित हो गये। उनके मन में भगवान् के

रमण करने की इच्छा उत्पन्न हुई। भगवान् ने कहा—“यह तो मेरा मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार है। भागे मैं एक लीलावतार धारण करूँगा, तब तुम खी होकर मेरे साथ रमण करना।” अतः उनकी इच्छा पूर्ति के लिये मैंने यह भुवन मोहन श्रीकृष्ण-वतार धारण किया।” कोई कहते हैं—“जब अगस्त्यादि ऋषियों ने आनन्द लक्ष्मणजी की बड़ी प्रशंसा की और कहा, मेघनाद वा बही मार सकता है, जो बारह वर्ष बिना खाये, बिना सोये ब्रह्मवर्ष व्रत का पालन करे।” श्रीराघव को बड़ा आश्चर्य हुआ। व बोले—“लक्ष्मण तो मेरे साथ नित्य ही फल खाता था, उसने मेघनाद को कैसे मारा?” लक्ष्मणजी बुलाये गये। भगवान् ने पूछा—“क्या तुमने बारह वर्ष भोजन नहीं किया?”

लक्ष्मणजी ने कहा—“नहीं प्रभो! मैंने न भोजन किया, न निद्रा ली।”

भगवान् बोले—“तुम तो स्वयं फल खाते थे और मैं तीन भाग करके तुम्हें दे देता था। तुम खाते नहीं थे क्या?”

अत्यन्त आश्चर्य के साथ भगवान् ने कहा—“अरे, भैया! हमें तो पता भी नहीं, तुम उन फलों को क्या करते थे?”

लक्ष्मणजी ने कहा—“महाराज! मैं आपके दिये हुए फलों वा अनादर कैसे करता? उन्हें सुखाकर रख लेता। अक्सर मिलने पर उन्हें वाण द्वारा भव्य भेज देता। वे सब फल मेरे पास अभी यहाँ रखे हैं।” कुतूहल के साथ भगवान् ने कहा—“यच्छा, लाओ उन फलों को।”

लक्ष्मणजी सब फल ले आये। गिने गये, तो चार दिन के कम निकले। भगवान् ने कहा—“चार दिन के कम क्यों हैं?”

लक्ष्मणजी ने कहा—“महाराज! पहिले दिन तो श्रृगबेरपुर में हम लोगों ने कुछ खाया ही नहीं था। जिस दिन पिता के

परलोक-गमन का समाचार मिला, उस दिन न मुझे आपने फल लाने की आज्ञा दी, न उस दिन किसी ने खाया ही। जिस दिन सीताजी का हरण हुआ, उस दिन किसी ने कुछ खाया ही नहीं; आपको अपने शरीर की भी सुधि नहीं थी। एक दिन उस दिन नहीं खाये, जिस दिन मुझे शक्ति लगी थी। उस दिन मे दिन भर मूर्च्छित पड़ा रहा, आप रोते रहे उस दिन भी कुछ नहीं खाया था। इसलिये चार दिन के कम हैं।”

भगवान् ने कहा—“धरे, भैया! यह तो बड़ी भूल हो गई। बड़ा बनना तो बहुत बुरा व्यापार है! बड़े लोग मेवको ने काम लेना ही जानते हैं। वे इस बात की सुधि नहीं रखते कि हमारे सेवक ने खाया या नहीं, उसे कुछ बट तो नहीं है। देखो, मे तो अपनी प्रिया के माथ वनो मे भी आनन्द-विहार करता रहा। तुमने कुछ खाया भी नहीं। इस क्षपराध का यही प्रायश्चित्त है कि अब के मे छोटा बनूँगा, तुम बडे बनना। अब के मे तुम्हारी सेवा करूँगा।” इसलिये श्रीकृष्ण छोटे बने और रोषावतार सदर्पण बोलबहा बनाया, किन्तु, छोटे बनकर भी ये बडे ही रहे। अब बड़े कहौ तक छोटे बने।

कोई कहते हैं—“भृगुजी के एक पुत्री थी, जिसका नाम लक्ष्मी था। उन्होंने विष्णु भगवान् के साथ उसका विवाह कर दिया, दहेज मे एक गाँव दिया। पीछे भृगुजी ने उस गाँव पर अपना अधिकार जमा लिया। विष्णु भगवान् ने कहा, यह मेरी बहू का है। इसी पर लू-लू, मे-मे हो गई। बड़ा न्यायलय तब तक स्थापित नहीं हुआ था। भृगुजी ने शाप दे डाला—“जाओ, तुम्हे दस-बार पृथ्वी पर अवतार लेना पड़ेगा। इसलिये ससुर के शाप से ये उत्पन्न हुए।”

कोई कहते हैं—“भृगुजी ने इन्हें यज्ञ की रक्षा का काम सौंपा

था। इसी बीच देवताओं पर असुरों ने चढ़ाई कर दी। विष्णु भगवान् चक्र लेकर भाग गये। उसी बीच असुरों ने धाकर सृष्टि के रज को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर सृष्टिजी ने कहा—“तुमने जामाता होकर भी मेरी आज्ञा-पानन में प्रमाद किया, अतः जाओ, तुम्हें वस बार पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ेगा।”

कोई कहते हैं—‘असुर देवताओं को मारकर सृष्टि की पत्नी के यहाँ छिप जाते थे। देवता वहाँ जा नहीं सकते थे। इस पर चक्र लेकर भगवान् ने उसका सिर काट दिया। इस पर सृष्टिजी ने उन्हें शाप दे दिया।’

कोई कहते हैं—“जाम्बवान को युद्ध से तृप्ति नहीं हुई, तब भगवान् ने उन्हें वर दिया कि श्रीकृष्णावतार लेकर हम तुमसे युद्ध करके तुम्हारी तृप्ति करेंगे।”

कोई कहते हैं—“नन्द-यशोदा पूर्वजन्म में द्रोण वसु धीर-धरा थे। उनसे ब्रह्माजी ने कहा—“तुम पृथ्वी पर उत्पन्न हो।” उन्होंने कहा—“भगवान् मे हमारी अचिरल भक्ति हो, वे बालरूप में हमारी क्रीडा में क्रीडा करें, तो हम पृथ्वी पर उत्पन्न हों।” भगवान् ब्रह्माजी ने कहा—“ऐसा ही होगा।” तब द्रोण-धरा ही नन्द-यशोदा के नाम से अवतीर्थ हुए। भगवान् भी ब्रह्माजी के वचनो को सत्य करने के लिये, बलरामजी के सहित, व्रज में रह कर उन दोनों को सुख देते रहे।”

कोई कहते हैं—“सुतपा और प्रसिन् ही वसुदेव-देवकी-रूप में अवतीर्थ हुए। उनके वर को सत्य करने भगवान् श्रीकृष्ण-रूप में उत्पन्न हुए।”

कोई कहते हैं—“श्रुतियों ने, अष्टराश्यों ने, ऋषियों ने नित्य परिकर वी सहस्ररियों ने भगवान् के साथ वृन्दावन में रास करने की इच्छा की। उनको इच्छा-सुति के लिये, रास-विलास-



करने के लिये, भगवान् सन्द-नन्दनरूप से ब्रज में प्रकट हुए।”

कोई कहते हैं—“बहुत से असुरों ने वर माँगे थे कि हम पृथ्वी पर राजा रूप से उत्पन्न हों, तो हमारी मृत्यु भगवान् के देखते-देखते हो, इसीलिये भगवान् से अवतार लिया।”

कोई कहते हैं—“इन्द्र ने भगवान् से प्रार्थना की कि मेरा पुत्र हो तो उसकी आप रक्षा करें। अतः इन्द्र के वर को सत्य करने, एकमात्र अर्जुन की रक्षा करने के लिये भगवान् ने यह रूप धारण किया।”

कोई कहते हैं—“भगवान् जब पृथ्वी की बराह रूप से ला रहे थे, तब भगवान् के स्पर्श से पृथ्वी के शरीर में सात्त्विक भाव उत्पन्न हो गये। इसी से पृथ्वी के एक पुत्र-भौमासुर-उत्पन्न हो गया। पृथ्वी ने प्रार्थना की, कि इसकी मृत्यु भगवान् के अतिरिक्त किसी से न हो। भगवान् ने तृप्तास्तु कह दिया। अब तो वह असुर आपने की अजर-अमर श्रीर अजेय समझकर अत्यधिक अत्याचार करने लगा। अब भगवान् के पुत्र की कौन मारे? इसीलिये उसे मारने की भगवान् अवतीर्ण हुए।”

सूतजी कहते हैं—“महाराज! कहाँ तक गिनावें! जैसे भगवान् अनंत हैं, वैसे ही उनके अवतार के सम्बन्ध में अनेकों कारण बताये जाते हैं। इन सब कारणों को सुनकर भी सब में स एव हो सामान्य ध्वनि निकलती है, कि भगवान् आपने आश्रित भक्तों को सुख देने-उनको इच्छा पूर्ण करने-के निमित्त कमनीय क्रीड़ा करने के लिये ही आते हैं। इसीलिये हम किसी एक कारण को उनके अवतार का निमित्त कारण बताकर उनके अवतार की भूमिना बाँधते हैं। आप यह न समझें कि उनके अवतार का यही एकमात्र कारण है। सब पूछा जाय, तो उनके अवतार का कुछ भी कारण नहीं, वे अकारण वैसे ही बालक्रीडा के सहस्र,

मनोविनोद के लिये, स्वेच्छा से अवतरित होते हैं। सुख देने-उनके सकेत पर कटपुतली की भाँति नाचने-से, स्वरूप होने पर भी, उगहे अत्यधिक सुख होता है। अतः भक्त को सुख देने-अपने सुख स्वरूप की प्रकाशित करने-वे अवतार पर आते हैं। कथा प्रसङ्ग चलाने को यह भूमिका बाँची गई है कि जब पृथ्वी पर कालनेमि, धरिष्ठ, धेनुव, केशी, प्रलम्ब, नरक सुन्द, वाण, भीम, तथा (हिरण्यकशिपु दन्तवक्त्र) हिरण्यकशिपुवाल आदि अनेकों असुर राजाओं के रूप में तथा अन्यान्य रूपों में उत्पन्न होकर पृथ्वी के भारभूत हो गये, तब भू का भार उतारने भगवान् ने अवतार धारण किया।"

इस पर शौनकजी ने कहा— 'सूतजी! जब यही बात है, तब असुरों को मारने को तो उनके एक केश का भी अवतार ही जाता तो वह ही सब देवों का नाश करने में समर्थ था; या किसी और में ऐसी शक्ति दे देते।'

सूतजी बोले— "महाराज! ये साधारण पापी नहीं थे। साधारण पापी तो अपने पाप से ही नष्ट हो जाता है। ये वेसे तो बड़े धर्मियाँ थे। जरासभ को ही ही देखिये, कितना ब्रह्मण-नष्ट था। कोई ब्राह्मण किसी समय भी आ जाय, वह उमका उसी समय सरकार करता था। जो भी ब्राह्मण उससे याचना करता, वह उसे वह वस्तु उसी समय देता। ऐसे धर्मियाँ असुरों को भगवान् के अतिरिक्त कौन मार सकता था? इन सब में सहस्रो लाखों हाथियों के समान चल था। ये ब्रह्मादि देवताओं से भी नहीं जीत जा सकते थे। रही केशवतार की बात, सो इन्हें मारने को तो भगवान् ने केश का ही अवतार धारण किया। भूमा पुरुष के श्वेत और गृष्ण केश में ही श्रीवलरामजी और श्रीकृष्ण का अवतार हुआ। नर-नारायण ने भी अवतार धारण किया, विष्णु

भगवान् ने भी अवतार धारण किया—ये सब कला अशादि अवतार आकर परिपूर्णवतार श्रीकृष्ण के विग्रह में अन्तर्भूत हो गये। खल निग्रह, गीतोपदेश आदि लोक कल्याण कारक कार्य इन्हीं अश कला अवतारों द्वारा हुए। परिपूर्णतम अवतार तो राग भोग में ही निमग्न रहकर अपने सच्चिदानन्द स्वरूप से भक्तों को—आश्रितों को—सुख देता रहा। इन सब विषयों का विस्तृत विवेचन समय समय पर होता रहेगा। आप मुझे कथा कहने दें। ऐसी शक्य करते रहेगे, तो कथा का प्रवाह ही रुक जायगा। ये भगवान् तकै से प्राप्त नहीं होते। इनको प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है—ऐसा अद्धा भक्ति के सहित इनके चारु चरित्रों का श्रवण करना, मन्त्र करना, विचार करना, कथन करना प्रचार करना प्रसार करना तथा स्वर सहित गान करना।"

श्रीनवजी बोले— अच्छी बात है सुतजी! अब आप कथा ही कहें।"

सुतजी बोले—“जैसे मेरे गुरुदय ने महाराज परीक्षित को भगवान् के अवतार का निमित्त कारण बताया उसे ही अब मैं कह रहा हूँ। पृथ्वी पर जब असुर अत्यधिक बढ़ गये और उनके बोझ को सहन करने में वह असमर्थ हो गई तब वह सत्यन्त दुखी होकर गौ का रूप रखकर, आखों में आँसु भरकर अत्यंत खिन होर दीन स्वर से विलाप करती हुई ब्रह्मा जी के पाग चली।

ब्रह्माजी का घर तो ब्रह्मलोक में है कि तु वे सारों भुवनों के स्वामी हैं, अतः सातों भूवनों के बीच ध्रुवलोचन ऊपर सुमेरु शिखर पर उठोने अपनी एक सभा बना रखी है, तार्कि ऊपर वे महान, तप और सत्यलोक के भी लोग आ सकें और नीचे

के भू, भुव और स्वर्ग लोक के भी लोग आ सकें। सात पाताल तो भू के विवर ही कहे जाते हैं, इनकी गणना तो भूलोक में ही की जाती है। यह ब्रह्माजी की सभा स्वर्गलोक से ऊपर तथा महर्लोक से नीचे है। शासक को अपने राज्य के बीच में ही राज सभा बनानी चाहिये। जब ब्रह्माजी की सभा लगती है, तब उसमें सभी के अधिष्ठातृदेव पहुँचते हैं, जैसे नदियाँ दिव्य रूप रखकर जाती हैं, पर्वतों के अधिष्ठातृ देव ग्राम नगरों के वेन, असुर, गन्धर्व, गुह्य, यक्ष, राक्षस, मृत, प्रेत, पिशाच—सारण समस्त जीवों के प्रतिनिधि ब्रह्माजी की सभा में उपस्थित होकर अपना दुःख-सुख सुनाते हैं। धर्म भी रहते हैं, अधर्म भी रहते हैं। ब्रह्माजी को सब की सुननी पड़ती है, सब का प्रबन्ध करना पड़ता है। जिनको भी कोई दुःख होता है, वे वहीं आकर रोते हैं। पृथ्वी भी गो का रूप रख कर उनकी सभा में पहुँची।”

इस पर शौनकजी ने पूछा—“सूतजी! आपने मना तो कर दिया है, कि तर्क मत करना, किन्तु बिना पूछे हमसे रहा नहीं जाता। पृथ्वी ने गो का ही रूप क्यों रखा?”

सूतजी बोले—“अब महाराज! यह बात तो आप पृथ्वी से पूछें। हमने तो पुराणों में पृथ्वी का जहाँ भी वर्णन सुना है, गो रूप से ही सुना है। जैसे गो के दरीर में सब देवताओं का निवास है, वैसे ही पृथ्वी भी सबका आश्रय है। गो का इसलिये भी रूप रखा होगा कि गो अत्यन्त भोली होती है, उस पर सभी लोग दया करते हैं। कन्या और गो—दोनों के गोलेपन को देख कर सब हृदय द्रवीभूत हो जाते हैं। पृथ्वी को सबके हृदय में दया उत्पन्न करने की भी, इसीलिये यह गो बनकर ब्रह्माजी के पास गई।”

शौनकजी बोले—“सूतजी! एक तनिक सी सद्गुण और रहः

गई। अच्छा, पृथ्वी तो जानती थी, ब्रह्माजी कुछ नहीं कर सकते। करने धरने वाले तो श्रीहरि ही हैं। पृथ्वी का भगवान् से परिचय न होता तब तो ब्रह्माजी की सहायता की अपेक्षा भी थी पृथ्वी रानो तो भगवान् की बहू ही हैं। फिर वे सीधे भगवान् के पास क्यों नहीं गई, उन्होंने इतना चक्कर क्यों लगाया ?”

यह सुनकर सूनजी बहुत खिलखिला कर हँस पड़े। इस पर मोनकजी ने शङ्कित होकर कहा— सूनजी ! हमारा प्रश्न कुछ गड़बड़ हो गया क्या ? हमने कुछ भूल कर दी क्या ?’ हँसते हुए सूनजी बोले— ‘महाराज ! जान बूझकर भूल नहीं की। प्रश्न में भूल हुई ही, किन्तु यह भूल गृहस्थों न होने से स्वाभाविक ही है। आप तो जन्म से ही बाबाजी बन गये हैं, गृहस्थियों के सदाचार को क्या जानें ! भगवन् ! श्री को जब पति ने कोई बात सबके सामने कहनी होती है तब वह बीच में पुनः पृथ्वी को बिठाकर कहती है। भूदेवी विष्णु भगवान् की बहू ठहरी। वह भी निर्लज्ज कसियुगी नहीं सतयुगी सती साध्वी ठहरी। वे अबले भगवान् के पास कैसे जाती ? घू घट खालकर कैसे बातें करती ? अतः चार मुह वाले अपने बैठे को साथ ले कर जाना उन्होंने उचित समझा। उनका एक मुख पिता के सम्मुख रहता एक माँ के सम्मुख। माँ घू घट में से उनके कान में जो कह देती, वही वे भगवान् से निवेदन करते। मुझे तो यही कारण प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त कोई कारण हो तो उसे आप जाने ।”

सूनजी कहते हैं— ‘सुनियो ! इस प्रकार पृथ्वी देवी ब्रह्माजी को भरी सभा में गई। सब देवता इन्हें देखकर चकित रह गये। ब्रह्माजी ने यथोचित उनका स्वागत सत्कार किया कुशल क्षेम

पूछा । माता ने अपना सब दुःख रो रोकर उन्हें सुनाया । ब्रह्मा जी सब सुनकर चिन्तित हुए । वे पृथ्वी देवी को धागे करके सब दयताओं को साथ लिये हुए शिवजी के समीप पहुँचे । शिव ने सब सुनकर कहा—‘मैं क्या कर सकता हूँ, करने धरने वाले तो वे ही ओहरि हैं । उनकी क्षरण में सब चल ।’ शिवजी की सम्मति मानकर सब क्षीरशायी श्री विष्णु के समीप चलने को प्रस्तुत हुए ।

छप्पय

सुख करहु उपाय भार मेरो उतरे सच ।  
 बाउ रसातल चली बहन की शक्ति नहीं अब ॥  
 लून के मू की बात सुरनि भझा उकताये ।  
 सुनि बोले अब असुर अवनिपे अगनित आये ॥  
 गङ्गाधर शिव दिग चलहु, वे कछु युक्ति बतायेंगे ।  
 फिर उनहूँ ह सग लै, कपलापति दिग जायेंगे ॥



## श्रीहरि द्वारा भू और देवों को आश्वासनः

[ ८१७ ]

गिरं समाधौ गगने समीरिताम्,  
निशम्य वेषास्त्रिदशानुवाच ह ।  
गां पौरुषी मे मृणुतामराः पुन-  
निधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥३॥  
( श्रीमा० १० स्क० १ अ० २१ श्लो० )

छप्पय

मन्त्रादिकं सर्वं देव अग्निं सँग शिव दिगं आवे ।  
पुनि अब, हर, सुर अग्य क्षीरसागरहि सिंचाये ॥  
देसि अपार पयोधि बिष्टु कुं सोचें सब सुर ।  
परि दरशन नहि भये अधिक चिन्ता व्यापी उर ॥  
हैं अभीर अद्भुत सहित, लगे करन विनती सबहि ।  
अब आयसु हृदि की सुनी, बोले देवनि ते तबहि ॥

सर्वज्ञ भगवान् काल के भी काल हैं । विश्व ब्रह्माण्ड काल के अधीन है, किन्तु काल भगवान् के अधीन है । भगवान् काल के

ॐ श्री गुरुदेव जी कहते हैं—'राजन् सीर सागर पर बह्मानी को समाधि में प्राकट्यवाणी सुनाई दी । उसे ध्वज करके उन्होंने इन्द्रादि देवताओं से कहा—“समस्तगण ! मैं जो भगवान् की प्रशिक्ष्यवाणी सुनी है, उसे तुम सब सुनो और सुनकर उसके अनुसार वृत्त कार्य करो । इस विषय में देर करने का काम नहीं है ।”

अधीन होकर कोई कार्य नहीं करते, किन्तु काल को ही आज्ञा कर देते हैं कि अगुक्त समय पर हमारे यहाँ उपस्थित हो जाना। भगवान् के सकेत पर काल जब आकर उपस्थित होता है, तब भगवान् योग निद्रा से उठकर हाथ मुहँ धोते हैं और फिर क्रीडा करने लगते हैं। क्रीडा करते-करते जब इच्छा होती है, वे सो जाते हैं। सोना और खेलना—ये ही बालमुकुन्द भगवान् के दो कार्य हैं। भगवान् 'जिस लोक में भी सोवें, उसी लोक के अर्ति, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी-रूप कगले यावक उन्हें प्राकर दीन वचन सुनाते हैं। इन खटमल और मच्छर रूपी स्वादिष्टों में बचने के लिये भगवान् दुग्ध के समुद्र के बीचो-बीच धयन करने हैं। सबसे सुन्दर चिकनी गुदगुदी सर्प की दह होती है। वे उन्नी की सुन्दर शय्या बनाते हैं, उस पर सहस्रत्वं गुदगुदा गद्दा बिछाते हैं। त्रिगुणों के तर्किये लगाते हैं और अंशे वन्द करके चुपचाप सो जाते हैं। उनको घूरानी भगवती कमलादेवी अपनी अत्यन्त बेमल जङ्घाओं पर उनके चरण कमलों को रखकर कमल से भी कीमल अपने कमनीय करो से शनैः शनैः सुहृताती रहती हैं। उनमें सुखद स्पर्श से योग निद्रा जाने से श्रीहरि के भयन उन्मीलित हो जाते हैं। वे कर्पाकर्म लेने लगते हैं। उनका धयन स्थान वैसे ही एकान्त तथा गुप्त है। प्रथम तो वहाँ कोई पहुँचता ही नहीं, कोई भूला भटका। अधिकांश दृष्ट सेवक पहुँच भी जाय, तो भगवान् असमय में उन्हें दर्शन नहीं देते, किसी अधिकांश से कहला देते हैं अभी मिलने का तो समय नहीं।

। मृतजी कहते हैं—'मुनियो! जब पृथ्वी देवी ने अपने दुःख की मिटाने के निमित्त चतुरानन भगवान् ब्रह्माजी से प्रार्थना की, तब वे शिवजी के समीप गये, फिर सबने मिलकर सम्मति की। सर्वसम्मति से यही निश्चय हुआ कि कर्ता, घर्ता सब श्रीहरि ही हैं।



सब को एक साथ मिलकर भगवान् की दारुण में जाना चाहिये। अब यह प्रश्न उठा कि भगवान् तो वैकुण्ठ में, श्वेत द्वीप में, क्षीर सागर में, और जाने कहाँ-कहाँ रहते हैं; किस स्थान में चलना चाहिये। इस पर ब्रह्माजी बोले— देखो भाई! यदि भगवान् वैकुण्ठ में या श्वेत द्वीप में इस समय होते, तो उन्हें आर्ष प्राणियों का क्रन्दन सुनाई अवश्य देता। प्रतीत होता है, वे गहरी निद्रा में कहीं सो रहे हैं। सोते हुए पुरुष को किसी की चिन्ता नहीं रहती, वह अपने आनन्द में मग्न रहता है। भगवान् के सोने का स्थान क्षीर सागर है। वहाँ अनेक बार मैं गया हूँ। मैंने उन्हें योगनिद्रा में, नेत्र बन्द किये, शेष-शेष्या पर शयन करते हुए, निहारता हूँ। अब वहाँ चलने से काम चलेगा।”

सब ने कमलासन की बात का साधु-साधु कहकर समर्थन किया। गोरूपा पृथ्वी की आगे करके समस्त ब्रह्मादि देव क्षीर-सागर की ओर चल दिये। वहाँ जाकर सब ने देखा कि द्रुव का समुद्र हिलारि मार रहा है। बड़े-बड़े दुग्ध के भ्राम किलारे पर लगे हुए हैं। जयन्त ने अपने एक नेत्र से, देवताओं ने अपने दो नेत्रों से, ब्रह्माजी ने अपने आठ नेत्रों से शिवजी ने अपने दश नेत्रों से, स्वामी कार्तिकेय जी ने अपने बारह नेत्रों से, और सहस्रांश देवेन्द्र ने अपने हजार नेत्रों से, चारों ओर आँख फाड़-फाड़ कर देखा, किन्तु भगवान् दिखाई ही न दिये। तब तो देवता बड़े निराश हुए कि उनका जाना ही व्यर्थ हुआ। भू देवी भी श्रद्धा करने लगी। सब की सान्त्वना देते हुए बूढ़े ब्रह्माजी बोले—“अरे देवताओं! तुम चिन्ता मत करो। भगवान् तो स्तुति से प्रसन्न होते हैं। सब मिलकर एक मन से, एक स्वर से, गद्गद करके स्तुति करो। देखो अभी भगवान् प्रकट होते हैं।”

“बाबा बाबयें प्रमाणम् ।” बूढ़े बाबा जो कह दें, वही ठीक । सब पंक्तिबद्ध, हाथ जोड़कर, सिर मुकाकर, छाती निकालकर खड़े हो गये और पुरुषसूक्त से करने लगे स्तुति, प्रिय भगवान् की स्तुति !

कोलाहल सुनकर भगवान् ने तेज बन्द क्रिये हो कहा—“यह-कोन कोलाहल कर रहा है ?”

सँड़ी को अपने दोनों कर-कमलों से दवाती हुई लक्ष्मी जी बोली—“प्राणनाथ ! देवता गण आये हैं, वे आपकी स्तुति कर रहे हैं ।”

भगवान् बोले—‘देवता बड़े अनाड़ी हैं । उन्हें इतना भी ज्ञान नहीं कि जब पट बन्द हो, शयन हो गया हो, तब न श्री विष्णु मन्दिर की प्रदक्षिणा करनी चाहिये, न वहाँ खड़े होकर स्तुति हो । इनको किसने सिखाया है ?’

लक्ष्मी जी बोली—‘चतुरानन आये हैं और साथ ही वसुधा जी भी हैं । किन्तु, आज तो वे बड़े-बड़े सोगे वालों की बृन् रही हैं, लहंगा-फरिया कुछ नहीं पहनी है, ऐंसे ही नङ्ग घड़ङ्गो लड़ी हैं ।’ अपनी धर्मपत्नी के आगमन को सुनकर भगवान् के मन में प्रेम तो हो ही गया । पुत्र के आगमन से क्रोध भी जाता रहा किन्तु, वे लक्ष्मी जी के सम्मुख अपना प्रेम प्रकट कैसे करे ? लक्ष्मी जी तनिक-सी बात में चुनक जाती हैं । अतः भगवान् बोले—“मेरे वेतार के तार वाले यन्त्र को मुख पर लगाओ । ब्रह्मा से कहो—“अलि बन्द करके अपने हृदय के यन्त्र को मेरे यन्त्र से मिला ले”, अभी मेरे उठने का समय नहीं हुआ । ये कामार्थी कुत्ताल हम जहाँ जाते हैं, वही पहुँच जाते हैं । मैं सेटे-सेटे हो ब्रह्मा को निकट सब बातें सुना दूँगा ।”

लक्ष्मी जी ने भगवान् की आज्ञा का पालन किया। भगवान् ने ब्रह्माजी के हृदय में कहा—“वयो ह्यहं मचाया है ?” दीनता के स्वर में ब्रह्माजी ने कहा—“प्रभो ! पृथ्वी माता बड़ी दुःखी हो.. ”

बीच में ही भगवान् ने कहा—“बहुत बाते करने की आवश्यकता नहीं। हमें सब पता है। हम ऐसा नहीं सोचें कि सब को भूल जायें। हमें सबकी रत्ती-रत्ती बात मालूम है। पृथ्वी के दुःख हमसे अव्यक्त नहीं हैं। अभी हमें ऐसे ही कुछ और पड़े रहना है। तब तक देवताओं से कहो, वे कुछ कार्य करें। स्वर्ग में ही पड़े-पड़े आनन्द न उठाते रहें।”

ठरते-ठरते ब्रह्माजी ने कहा—“देवताओं के लिये क्या आज्ञा है। उन्हें क्या करना होगा ?”

भगवान् ने कहा— देवता सब जाकर पृथ्वी पर यदुकुल में अवतार लें। वे तब तक पृथ्वी पर रहें, जब तक मैं अपनी काल शक्ति में पृथ्वी का मार मछ करते हुए भूलोक में बिहार करूँ। मैं स्वयं यमुदेव जी के यहाँ अवतरित होऊँगा। देवताओं की खिमी भी ब्रज में मेरी प्रसन्नता के लिये उत्पन्न हो। मेरे फलारूप स्वयं प्रकाश सूर्यसहस्रवदन शेषजी भी मेरा प्रिय करने के लिये मुझसे प्रियम अवतीर्ण होंगे। जिन मेरी परम ऐश्वर्य शालिनी योगमाया ने सम्पूर्ण चराचर जगत को मोहित कर रखा है, वह भी मेरी आज्ञा से मेरा काय करने के निमित्त अपने अश से प्रकट होगी। अब जाओ भाग जाओ, मुझे सोन हो।”

हृदय में भगवान् का आदेश/पाकर ब्रह्माजी उठकर लड़े हो गये। देवता वाणीसे तो स्तुति कर रहे थे किन्तु क्षीर सागर में चारों ओर अँधेरा फाड़-फाड़कर देखा रहे थे, कि कब भगवान् प्रकट होते हैं। जब ब्रह्माजी लड़े हो गये, तब सभी अकवक

कर उनके मुख की ओर निहारने लगे और निराशा के स्वर में पूछने लगे—‘प्रभो ! अभी तक भगवान् के दर्शन नहीं हुए ! भगवान् कब प्रकट होंगे ?’

ब्रह्माजी ने गम्भीर होकर कहा—‘इस समय भगवान् योग-निद्रा में हैं। वे इस समय दर्शन न देंगे। उन्होंने मेरे हृदय में आप सब के लिये सदेश दिया है।’

अत्यन्त उत्सुकता के साथ देवताओं ने पूछा—‘भगवान्, ने हमारे लिये क्या उपदेश दिया है प्रभो ?’

ब्रह्माजी बोले—‘देखो, समाधि अवस्था में मुझे आकाशवाणी सुनाई पड़ी। उसे मैं आप सब को सुनाता हूँ। उसे सुनकर आप सब उसके अनुसार अविलम्ब कार्य करें, देर मत करें।’

देवता बोले—‘हाँ, भगवन ! हमें आज्ञा करें। हम आपकी आज्ञाओं का यथाशक्ति पालन करेंगे।’

ब्रह्माजी बोले—‘भगवान् ने कहा है—मैं तमोगुणी निद्रा में सो नहीं रहा हूँ। मुझे सब पता है। मैं, मेरे अष्टावतार क्षेत्र तथा मेरी सुवनमोहिनी माया-शक्ति-सब अस्त्रों पर अवतरित होंगी। देवाङ्गनाओं के साथ देव भी यदुकुल में जाकर पृथ्वी पर उत्पन्न हों। मैं वसुदेव के घर जन्म लेकर भू का भाव उतारूँगा।’

यह सुनकर पृथ्वी प्रसन्नता के साथ कान खड़े करके अपने सींगों को हिलाने लगी, पूँछ फटफटाने लगी। देवता हर्ष में भरकर जय ध्वनि करने लगे।

ब्रह्माजी ने कहा—‘भैया ! अब देर करने का काम नहीं। तुम लोग स्वर्ग में जाओ और तुरन्त यादवों के यहाँ नन्द के राज में अवतीर्ण हों। सूर सूर्यद्वय भी दुन्दर वेध बनाकर द्यामनुन्दर को रिझाने को, उनसे ढीठा कराने को, उत्पन्न हों।

मैं भी जब अपने सत्यलोक को जाता हूँ। मेरा बहुत काय पड़ा होगा। 'ये पृथ्वी माता' भी अपने यहाँ जायें। जब तो ये भगवान् के वरगुण कमल की पराग पड़ने से पावन होने पर भी परम पावन बन जायेंगी।'।

सुतजी कहते हैं—मुनिगो! ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर सभी अपने-अपने लोकों को चले गये। ब्रह्माजी भी सत्यलोक में गए।

#### छप्पय

होवे यदुकुल माहिँ शीघ्र अघतरित सुरारी।  
हरि ते अबिदित नहो विपति की बात तुम्हारी॥  
अथ प्रकटे बल सहित योग गाया हूँ आवे।  
पूजित जग महे होहिँ असुर संहार करावे॥  
यदुकुल गोकुल माहिँ सप, सुर-सुरलला देह धरि।  
अकटि करहु सुरतनु सफल, ऐसी आयसु दई हरि॥



## वसुदेवजी का विवाह

[ ८१८ ]

राजधानी ततः साभूत् सर्वयादवभृशुजाम् ।  
मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥  
तस्यां तु कर्हिचिच्छीरिर्वसुदेवः कृतोद्ग्रहः ।  
देवक्या स्पर्षया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥॥  
(श्रीमा १० स्क० १ पं० २८, २९ त्तो०)

छप्पय

हरि-सन्देश सुनाइ परा कूँ धौर पँधायो ।  
मखलोक अज गये सबनि को मन हरपायो ॥  
निज ललननि के संग अवनि पै जनमे सुरगन ।  
जिन सौख्यो सर्वस्व कृष्ण कूँ निज तन-मन-धन ॥  
सुगह कथा पावन परम, श्री मथुरा की मथुर अष ।  
शूर-तनय वसुदेवजी, के विवाह को श्रुत सब ॥

विवाह एक परम घासिक कृत्य है। विवाह न हो, तो जीवन में सरसता नहीं, सृष्टि की उत्पत्ति नहीं, शुद्धि नहीं सप्रह नहीं, सधम नहीं नियमन नहीं। मिथुन होने को, एक से

श्री श्री गुरुदेव जी कहते हैं—“राजन् । वन द्विती समस्त मथुरा की राजाओं की वह मथुरापुरी ही राजधानी थी, जिसमें सबका ही धीहरि विराजमान रहते हैं। एक बार की बात है कि उसी नगरी में कभी शूर के पुत्र वसुदेव जी नया विवाह करके अपने पर जाने के लिये अपनी नई बहू के साथ रथ पर सवार हुए ।”

घनेक होने की, जीवमात्र की स्वाभाविक इच्छा होती है। स्वाभाविकी इच्छा टाली जा सकती। उसे सयत किया जा सकता है। जिनके मन में इच्छा नहीं, कामना नहीं, उन्हें तो सयत करने की आवश्यकता नहीं। जिस भवन में विछोना, चौकी, बिज, पाश, फल फूल, आदि साज-शृङ्गार के समान हैं ही नहीं, वहाँ तो उन्हें यथा स्थान लगाने का प्रयत्न ही नहीं। किन्तु, जहाँ ये सब सामग्रियाँ हैं और उन्हें वैसे ही अस्त-व्यस्त रूप से भवन में ठूँस-ठूसकर भर दिया है, वहाँ यह भवन और वस्तुओं का दुरुपयोग है। इसी प्रकार स्वाभाविक वासना को सयत करने, उसे नियमानुसार सजा-बजाकर रखने का ही नाम 'धर्म' है। ससार में कोई वस्तु बुरी नहीं, कोई अच्छी नहीं, उनका उपयोग ही भला-बुरा है। घृत को श्रमृत कहा है, किन्तु घृत को मर्मादा से अधिक खा लो, तो वह विष का काम करेगा। तँदि के पान में खाओ, तो वह हानि करेगा। बरखर माथा में राहद में मिलाकर खाओ, तो वह मारक हो जायगा। इसी प्रकार मिथुन होने की इच्छा को शास्त्रीय पद्धति में धर्म पूर्वक विवाह करके पूज्य करना यह भगवान् का स्वरूप है। तभी तो नव वर-वधू के दर्शन को लक्ष्मीनारायण का दर्शन कहा है। जब नव वर-वधू नवीन विवाह करके घाते हुए दिखाई दें, तो खड़े होकर उन्हें प्रणाम करना चाहिये, चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हों।

सूनजी कहते हैं—मुनियो ! ब्रह्मादिक देवताओं के चले जाने के अनन्तर भगवान् ने अपने कमल नयनों की पुनः बन्द कर लिया, किन्तु अब उन्हें निद्रा नहीं आयी। उन्होंने एक ही बार इधर-उधर करघटें बदली। लक्ष्मीजी ने कहा—“क्यों ? नींद उषट आई क्या ?”

मगवान् यह सुनकर हँस पड़े और बोले—“प्रिये ! तुम तक जानती हो । यह बड़-बेटो की चिन्ता ऐसी होती है, कि पुरुषों को न भोजन अच्छा लगता है, न निद्रा ही आती है । चिन्ता के समय निद्रा भाग जाती है । मेरो इच्छा अवतार धारण करने की है ।”

लक्ष्मीजी ने कहा—“तो, महाराज ! मैं यहाँ मिलेती बंठो-बंठो क्या करूंगी ? मैं भी आपके साथ ही पृथ्वी पर अवतार लूँगी ।”

मगवान् बोले—‘देखो, हमारा तुम्हारा अवतार साधारण मनुष्यों के यहाँ तो नहीं हो सफ़ता । तुम तो विद्वन्मय महाराज भौत्मक के यहाँ अवतार धारण करो; क्योंकि वे बड़े धर्मिमा, सत्परायण, सरल और सदाचारी हैं । ससार में उनके अतिरिक्त तुम्हारा पिता बनने के योग्य दूसरा पुरुष नहीं है । मैं सूरसेन-सुत श्री वसुदेव जी के यहाँ जन्ममाता देवकी के उदर से अवतीर्ण होगी । वे ही दम्पति परम धर्मिमा तथा सर्वगुण सम्पन्न हैं । उनके अतिरिक्त भवति पर अन्य पुरुष मेरे माता पिता कहलाने के योग्य नहीं हैं ।’

लक्ष्मीजी ने कहा—‘अच्छी बात है, महाराज ! किन्तु फिर आप मेरे साथ विवाह कर लेना । कहाँ ऐसा न हो, मैं आपको बाट ही देखती रहूँ । यहाँ तो चारों ओर समुद्र है, बीच में अकेली मैं हूँ । आप मुझे प्यार करते हैं । वहाँ तो बहुत-सी स्त्रियाँ होगी । सब देवाङ्गनाये भवतीर्ण होगी । मुझे भूल मत जाना, भला ?’

मगवान् ने लक्ष्मीजी की ठोड़ी ऊँची करते हुए कहा—“प्रिये ! तुम ऐसी बातें क्यों कह रही हो ? भला तुम्हें कभी भूल सकता हूँ ? तुम्हारे बिना तो मुझे नींद भी नहीं आती ।, अचछी



बात है। तो मैं भूमि के अपने नित्य धाम श्री मथुरापुरी में प्रवेश  
हूँगा।”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो! भगवान् ने श्री महालक्ष्मी जी  
के साथ ऐसा निश्चय कर लिया। अब जिनके यहाँ भगवान् अब-  
तरित होंगे, उन वसुदेव जी का भी वृत्तान्त सुनिये।”

महाराज देवमीड के पुत्र सूरसेन हुए। वे बड़े धर्मात्मा और  
प्रजावरसल थे। वे माथुर मण्डल तथा सूरसेन देश के राजा  
थे। उनके पुत्र वसुदेवजी थे। उनका विवाह सात्वतवशीय महा-  
राज उग्रसेन के भाई देवकी की छ पुत्रियों के साथ हुआ। उनके  
छ पत्नियाँ पहिले थी। इस प्रकार बारह विवाह तो उनके ही  
चुके थे। अब महाराज देवकी की सबसे छोटी पुत्री देवकी की  
रह गई थी। उसे राजा अत्यन्त ही प्यार करते थे। वह लड़की  
ब्या थी साक्षात् जगदम्बा का ही स्वरूप थी। जो भी कोई उसे  
देखता, वही उनके बीज, तेज, रूप, लावण्य, प्रभाव तथा कान्ति  
को देखकर नतमस्तक हो जाता अपने प्राण उसका श्रद्धा से नत  
मस्तक हो जाता। महाराज देवकी चाहते थे, मेरी पुत्री को कोई  
सर्वगुण सम्पन्न पति मिले और वह मथुरा में ही हो, क्योंकि  
मथुरा की बेटी मथुरा में ही विवाही जाय, तभी उसकी शोभा  
है। एक कहावत भी है—

मथुरा की बेटी, गोबुल की गाय। भाग्य फूटे तो बाहर  
जाय।” यही सब सोच-समझकर उन्होंने निश्चय किया—“वसु-  
देवजी सर्वगुण सम्पन्न हैं। ससार में खोजने पर भी देवकी के  
स्त्रिये ऐसा दूसरा पति कहीं नहीं मिलेगा। इसकी छ बड़ी बहिन  
भी वसुदेव जी के साथ ही विवाही गयी हैं। वे सब देवकी को  
प्राणों से भी अधिक प्यार करती हैं। बाहर कहीं गईं, तो न  
जाने कैसे दरानी-जिठानी मिलें। देवकी तो स्वयं न लड़ेगी।”

किन्तु दूसरी शैरानी, जिठानी, ननद, सास लडती हैं, तो मन में कुछ न कुछ दुःख होता ही है। वसुदेव जी के यहाँ सभी बातें अपनी समझी-समझी ही हैं, अपना घर ही है। वही इसका विवाह करना उत्तम होगा।' यह सोचकर उन्होंने गर्ग जी द्वारा वसुदेव जी के यहाँ सगाई भिजवा दी। वसुदेवजी तो यह चाहते ही थे। उन्होंने सगाई स्वीकार कर ली और नियत तिथि पर घर बनकर बाजे-गाजे के साथ बरात लेकर देवकजी के द्वार पर जा पहुँचे। देवकजी ने बड़े उत्साह के साथ बरात की आगमनी की, द्वार पूजन हुआ, जनवासा दिया गया। नियत लग्न में बड़ी धूमधाम से, ब्राह्मणों के वेद-धोष के साथ, वसुदेव जी ने देवकी जी का पाणि-ग्रहण किया। दोनों ओर से हर्ष का ठिकाना नहीं था। शङ्ख, डुण्डुभि, भेरी, नगाड़े, आदि बाजे ध्वज रहे थे। आकाश से देवता पुष्पो को वृष्टि कर रहे थे। इस प्रकार अत्यन्त उत्साह के साथ विवाह की विधि सम्पन्न हुई। दो-चार दिन बरात और ठहरी। अन्त में विदाई का दिन आया। वसुदेव जी मोर बाँधकर घर में बहू को विदा कराने गये। सास-सरहजो ने उन्हें समझाया, सरसता से सनी बातें कही, धी-धी धुप खिलाया। कुकु मधुषि का तिलक किया, अक्षत लगाये और देवकी को समझा-बुझाकर विदा किया। लडकी की विदाई के समय बड़ा काशीक दृश्य उत्पन्न हो जाता है। घर के सभी लोगों के नेत्र में जल भरा रहता है। सभी आर्द्र हृदय से अत्यन्त प्यार के साथ लडकी को विदा करते हैं।

देवकी रोती-रोती वसुदेवजी के पीछे-पीछे जा रही थी। उस की माता वहने उसे पकड़े हुए थी। वह कभी किसी की छाती से बाँटकर रोने लगती कभी किसी के कन्धे से बन्धा सटाकर बिलसने लगती। खियाँ उसे समझाती, चुप कराती। बाहर

बल्लभ को विदा करने पुरुष खड़े थे। देवकी अपने ताऊ उग्रसेन के गले लगाकर रोने लगी। महाराज उग्रसेन ने उसके सिर पर हाथ रखा और समझाते हुए प्यार पुचकार कर कहने लगे—  
“अरे बेटो! ऐसे भला कोई रोते है। तू कहीं दूर थोड़े ही जा रही है। हम जब चाहे तुम्हें बुला लेंगे। वहाँ तेरी सब बड़ी-बहने हैं, रोने की कोई बात नहीं। जा अब, तुम्हें शीघ्र ही हम बुला लेंगे।” यह कहकर उन्होंने अपने आँसुआ को पोछा। फिर देवकी अपने पिता से मिली। वह अपने बड़े भाई नंस से लिपट कर रोने लगी।

अपनी बहन को रोते देखकर क्रूरकर्मा कंस का हृदय भी भर आया। बहन का स्नेह होता ही ऐसा है। वहन साक्षात् दया की मूर्ति होती है। वह सजीव कल्याण की प्रतिमा होती है। भाई से तो साधारण लोग भी विरोध कर सकते हैं, किन्तु बहन से विरोध तो नृशंस, आत्मघाती, पापी, दुराचारी हो करेंगे, जिन्हें धन का, प्राणों का, अत्यधिक मोह होगा। वस वैसे बड़े उग्र स्वभाव का था, किन्तु विदा होते समय बहन के रुदन को देखकर उसका भी हृदय पानी-पानी होगा। उसने गूँझिया, वे समान सजीव-धन जो अपनी नव विवाहिता छोटी बहन को प्यार दुलार तथा भ्रमत्व के सहित पकड़ कर रथ पर चलाया। वसुदेव जी भी चुपचाप रथ पर बैठ गये। देवकी भैया भैया कहकर पुकार रही थी। स्नेह भरित हृदय से खड़े-खड़े कंस यह सब देख रहा था। स्त सफेद चार घोड़ों की रश्मियों को पकड़े हाथ में तीज लिये कंस की आज्ञा की प्रतीक्षा में था, कि कब उसे आज्ञा मिले और कब वह रथ को हँके। सहसा कंस को भगिनी के स्नेह के कारण एक सुमति सुनी। उसने सोचा—“मैं स्वयं ही रथ को हँकाकर देवकी को उसकी समुत्तल तक पहुँचा जाऊँ। इससे

वह बड़ी प्रसन्न होगी कि मेरे भाई मुझसे कितना प्यार करते हैं।' इस विचार के आते ही उसने सूत को हटाने की आज्ञा दी।" सूत एक ओर हट गया। उछलकर कस सूत के स्थान में बैठ गया और घोषों की रस्मियों की हाथ में लेकर वहन की प्रसन्नता के लिये स्वयं रथ हाँकने लगा। उसके रथ के पीछे सुवर्णमण्डित बहुत स रथ चल रहे थे।

महाराज देवक अपनी पुत्री देवकी की अत्यधिक प्यार करते थे। पुत्री की प्रसन्नता के लिये उन्होंने बहुत सी वस्तुएँ दहेज में दी थीं। सुवर्ण की मालाओं से विभूषित, पर्वत के समान झील-झील वाले, अच्छी जाति के सुन्दर शिलित चार सौ हाथी उन्होंने दिये थे, और पन्द्रह सहस्र उत्तम वर्ण के, दर्शनीय, बाघ के समान वेग वाले, छरहरे सिन्धु देशीय घोड़े, सुवर्ण मण्डित, सुदृढ़ मनोहर घठारह सहस्र रथ, उन्होंने पुत्री के पीछे-पीछे कर दिये थे। सत्ता की सेवा करने के लिये सुन्दर स्वभाव वाली, सुशीला सन्दरी नवयुवती विचित्र वस्त्राभूषणों से विभूषित, दो सौ दासियाँ उन्होंने दी थीं। इन सब दहेज की वस्तुओं को लिये, गुप्तमुड़ी मारे विवाह के वखों में समीप बैठी हुई अपनी बहू के साथ रथ में बैठे हुए वसुदेव जी अपने घर के लिये चले। उनका साला कस बड़े स्नेह से रथ को हाँक रहा था। सब लोग मन ही मन उसके मगिनी-प्रेम की प्रशंसा कर रहे थे। विदाई के वाजे बज रहे थे। शहू तूर्य, मुदङ्ग, डुडुमि आदि अनेक मङ्गल मय वाद्य एकसाथ बजकर एक विचित्र प्रकार की शोभा का विस्तार कर रहे थे। घर वधू की विदाई के समय के सभी कृत्य हो चुके थे। देवकी की विदाई के वाजे ब्रह्मलोक को पार करके बहुष्णुलोक तक में सुनाई दिये। भगवान् ने देखा, अरे जिस माता के उदर में जन्म लेना है उसी की विदाई के तो ये वाजे बज रहे हैं।

‘किन्तु, जिस यदुवशी राजा बने कालनेमि मामा को मुझे मारना है, उसका यदि अपनी बहन के प्रति ऐसा ही वात्सल्य बना रहा, तो मैं भला कैसे उसे मार सकूँगा ? असुरों के हृदय में भी यदि स्नेह उमड़ आया, तो वे मेरे दूँपी, कोधी अनुगत कैसे हो सकते हैं ? इसीलिये किसी प्रकार इसका बहन से विरोध करा दो ।’

भगवान् को बैठे छाले एक न एक उत्पात सूझना ही रहता है । इस विचार के आते ही, उन्होंने कस को सचेत करने के लिये आकाशवाणी की । उस आकाशवाणी के सुनते ही रङ्ग में भङ्ग हो गया । सबका उत्साह शिथिल पड़ गया । स्नेह के स्थान में डप छा गया, प्रसन्नता के स्थान में भय का साम्राज्य हो गया । आनन्द और उत्साह का स्थान शोक, शोक और चिन्ता ने ग्रहण कर लिया ।

इस पर क्षीतक जी ने पूछा—‘सूतजी ! वह आकाशवाणी क्या बोली ? उसमें कस को इतना भय क्यों हुआ ?’

सूतजी बोले—‘अजो महाराज ! प्राणिमान को अपने प्राण ध्यारे होते हैं । सभी उपाय करके मनुष्य जीवित रहना चाहता है । आकाशवाणी ने जो कुछ कहा, उसमें पीछे कहूँगा । क्या कहते-कहते मेरा कण्ठ कुछ सूख सा गया है । तनिक आचमन कर लूँ, फिर आपकी इस पुण्यप्रद प्रसंग को सुनाऊँगा ।’

छुप्पय

श्री वसुदेव विवाह देवकी के संग कीन्हो ।  
देवक अधिक दहेच विदा बैला सहँ दीन्हो ॥  
रोवत-रोवत चली देवकी पीछे घर के ।  
अश्रु विमोचन करत गये रथ तक सब घर के ॥  
सब परिजन रोवन लगे, नेह कस हिय हूँ जग्यो ।  
करथो सारथी दूर रथ, स्वयं हरपि हौं कन लग्यो ॥

## कंस को आकाशवाणी

[ ८१६ ]

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभ्याहाशरीरवाक् ।  
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो इन्ता यां वहसेऽयुध ॥३॥  
( श्रीमा० १० स्क० १ अ० ३४ श्लो० )

छप्पय

मम महँ सहसा सुनी कस ने नभ ते' वानी ।  
“जा रे लैके जाइ प्रेम ते ओ ! अज्ञानी ॥  
ताको अष्टम पुत्र पकरि के तोड़ पड़ाई ।  
भरी सभा महँ लेखि मझ ते' निश्चय मारे ॥  
फस सुनत अति क्रुपित है, चल्थो देवकी बध करन ।  
लखि उग्रम वसुदेवजी, सहमि सरल बोले वचन ॥

समस्त प्राणिमो के सभी गर्भ, सभी जेष्ठार्थ, सभी व्यापार  
इसी उद्देश्य से होते हैं, कि हम मुख पूर्वक सदा जीते रहें । इस  
रात को सभी जानते हैं, कि जा जन्मा है, वह अवश्य मरेगा ।  
जसको उत्पत्ति है, उसका विनाश भी है । फिर भी प्राणी मरना  
ही चाहता । मृत्यु को टालना चाहता है । मन्त्र, तन्त्र, भोपथि,

\* धीमुरदवजो कहते हैं—“राजन् ! भवनी महत् देवकी को पहुँचाने  
लिए पद मे जित समय बस रख दूँगा रहा था, उसी समय उसे यह  
आकाशवाणी सुनाई दी—मरे, मूर्ख ! तू जित बहन को रख मे बिठाकर  
जा रहा है, दूरी के घाटने गर्भ से उत्पन्न होने, बाप का नामक पुत्र  
रने मारा होगा ।”

बल पुरुषाय सभी लगाकर वह अपने को काल-कवलित होने से बचाना ही चाहता है। इसीलिये वह दूसरे से डरता है दूसरे को मारकर स्वयं जीना चाहता है। यही मोहन की मोहनी साया है। यही अखिलेश की अनिवचनीय अनादि अविद्या है। अपरोक्ष ज्ञान से, अहेतुकी शक्ति से ही इस माया का इस अनादि अविद्या का, आत्मनिक नाश हो सकता है, कसारि की कृपा के अतिरिक्त इससे पार होने का अन्य उपाय नहीं है।

सुतजी कहते हैं— 'मुनियो ! रथो की गडगडाहट, अवबो की टापों की तडतडाहट, हाथियों के घन्टों की धनधनाहट, नूपुर पाजेव, कर्षनी तथा चूड़ियों की खनखनाहट, तथा भेरी शङ्ख, मुद्गल आदि बाधों की सुसधुर ध्वनियों के बीच कस वड़े सल्लास के साथ देवकी के रथ को हाँके हुए जा रहा था, कि सहसा मार्ग से ही उसे आकाश से एक वड़ी ही सुस्पष्ट गम्भीर वाणी सुनाई दी। वह वाणी कहाँ से आ रही है, कुछ पता नहीं कौन कह रहा है, कुछ ज्ञात नहीं। वह अशरोखी वाणी थी। कस को ही सम्बोधित करके वह कहीं जा रही थी। कस के कान खड़े हुए। वह एकाग्र चित्त से ध्यान लगाकर वह वाणी सुनन लगा। आकाशवाणी कह रही थी— 'धरे मुख ! तू जिस अपनी बहन को इतने प्यार-दुलार में रथ में बिठाकर पहुँचाने जा रहा है इसी के घाठवे गर्भ से एक बालक उत्पन्न होगा, जो तेरा काल होगा, उसी के द्वारा तेरी मृत्यु होगी ' ,

वहाँ तो बहन की विदाई के समस्त हर्ष से उसका हृदय भूर रहा था, कहीं अनुराग धीरे करण, उसका अन्त करण आग्र हो रहा था, कहीं सहसा मृत्यु की बात सुनकर उसकी मूर्त्ता जाग उठी। प्रेम का स्थान प्रति हिसाने ग्रहण कर लिया 'अरे, इसी छोकरे का छोकरा मुझे मार डालेगा ? तब तो इस-

*अनुराग*

विप को बेलि को स्वयं ही सोचना है। विपघर सपिण्णी को गले में डालकर उसके विप का वृद्धि करनी है। जब इसी का लड़का मुझे मारने वाला होगा, सब लड़का होने के पूर्व इसे ही मैं क्यों न मार डालूँ ? बेलि के बढ़ने के पूर्व ही उसको जड़ को क्यों न काट दूँ ? चोर के उत्पन्न होने के पूर्व उसको माँ को ही क्यों न मार दूँ ? कार्य होने के पूर्व कारण का ही क्यों न नष्ट कर दूँ ? न रहेग वीन, न बनेगी बंगुरी। इस बेबका का ही क्यों न मार दूँ ? जब यह रहेगी ही नहीं, तब इसका बाटवर्ग गर्भ कहीं से होगा ? हस्पा की जड़ को ही काट दो, गर्भासय को ही समाप्त कर दो। बीज को ही सुनकर निर्जीव कर दो। अभी तो यह मेरे बसा में ही है। उपस्थित को छाड़कर बाग की आशा क्या रखनी ! इस पर दया करना उचित नहीं !”

यही सब सोच-समझकर उसने रथ को रोक दिया। सारथी से कहा—“रक्षिणों को शीघ्र ही सम्हालो !” हाथ उठाकर बाजे वालों से उसने कहा—“बाजे बजाना रोक दो !”

कस का आशाओं का अविलम्ब पालन हुआ। बाजे बन्द कर दिये गये। पीछे के रथ रुक गये। सारथी ने शीघ्रता से घाड़ों की रक्षिणों को धाम लिया। कमर में लटकती हुई कर-बाण (तलवार) को कस ने सझाक से खींच लिया। बसुदेव जी की बगल में बैठे देवकी की काली-काली मालती के पुष्पो की मालाओं से मुझे सपिण्णी के समान सम्बन्धों छोटी उसने उसका धूपट हटाकर बायें हाथ से कस कर पकड़ ली और दायें हाथ से तलवार घुमाकर उसने ऊपर ही उसके सिर को घड़ से पृथक् करना चाहा, त्यों ही बीच में ही बसुदेवजी उस भोजकुल-कलङ्क महापापी निलंज कस से बोले—“राजन् ! आप यह क्या कर रहे हैं ?”



कस ने लाल-लाल आँखें निभालकर कोष्ठ के स्वर में कहा—  
“इसे यम मदन पठा रहा है।”

वसुदेवजी ने चर्य के साथ कहा—“बयो बयो ? क्या बात है ?  
बयो आप ऐसा महान् निन्दनीय क्रूर कर्म करना चाहते हैं ?

कस ने क्रोध में भरकर कहा—“यह क्या क्रूर कर्म है ?  
कस तुमने आकाशवाणी सुनी नहीं ?”

गम्भीर होकर वसुदेवजी बोले—“राजन् ! मैंने सब कुछ  
सुना है। फिर भी आप जैसे मशस्वी, तेजस्वी, शूर-वीर व्यक्तियों  
को ऐसी क्रूरता सोभा नहीं देती। आप कोई साधारण पुरुष  
तो हैं नहीं, भोजवस की कीर्ति को बढ़ाने वाले हैं। समस्त शूर-  
वीर आपके गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। ऐसे परम-  
अस्थाय शूरवीर होकर भी आप एक नहीं तीन-तीन महापाप  
करने को उद्यत हो रहे हैं।”

कस ने देवकी की छोटी को पकड़े हो पकड़े कहा—“मैं कौन  
से तीन-तीन पाप कर रहा हूँ ?”

वसुदेवजी बोले—“सुनिये, विवाह मङ्गल का उत्सव है। जो  
किसी क विवाह में विघ्न डालता है, वह रौरव आदि नरको में  
जाता है। इसलिये शक्ति भर दूसरों के विवाह में सहायता  
देनी चाहिये। विघ्न तो कभी डालना ही न चाहिये। नव वरवधू  
को कभी कुवाच्य भी न कहना चाहिये। एक तो आप विवाह  
में विघ्न डाल रहे हैं। शास्त्रकारों ने स्त्री को सदा ब्रह्म्या  
बताया है। स्त्री से चाहे जैसा अपराध हो जाम, उसका बध  
कभी न करना चाहिये। आप स्त्री-वध कर रहे हैं। खी भी  
सामान्य नहीं है—आपकी छोटी बहिन है सीधी और सरल है,  
अभी-अभी उसका विवाह हुआ है। दूसरा खी-बल का पाप घाप  
कर रहे हैं। तीसरा पाप यह कि आपके पिता चाचा सब खाड़े

हैं। ये धपमो पुत्रो को प्रेमपूर्वक विदा कर रहे हैं। आप इनका अपमान कर रहे हैं। सन्तान पिता को भात्मा ही कही गई है। इसलिये आप देवकी का वध नहीं कर रहे हैं, धपने पितृव्य देव का वध कर रहे हैं। अनः हे धीर ! घाप ऐसा निन्द्य, क्रूर कर्म करने का कभी स्वप्न में भी साहस न करें।”

कुछ सम्मल कर कस बोला—“यसुदेवजो आप बात तो यथार्थ कह रहे हैं। किन्तु देखिये, अपने प्राण मय को प्यारे होते हैं। सम्मुख मृत्यु दिखाई देती ही, तो बुद्धिमान को यथावत्ति उसे हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। मैं मानता हूँ, यह मेरी वहन है। किन्तु अपने ही शरीर का कोई अंग सड़ जाय, और उससे अन्य अंगों को हानि की सम्भावना हो, तो बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि उस अंग को काट कर अन्य अंगों को रक्षा करे। जब इसका लडका मुझे मारने वाला होगा, तो मैं ही इसे पहिले से क्यों न मार दूँ। इससे आपको कोई विदोष हानि भी नहीं। बारह पत्नियाँ तो आपके हैं ही, एक न सही।”

यसुदेवजो ने कहा—‘माई ! देखो, सुनो हमारी बात। तुम चाहते हो, तुम्हारी मृत्यु कभी न हो। यह असम्भव बात है। जिसने जन्म लिया, वह अवश्य मरेगा। हिरण्यकशिपु ने मृत्यु से बचने के लिये कितने उपाय सोचे, कितने वर माँगे। अन्त में उसकी भी मृत्यु हुई ही। एक अशुर ने वर माँगा, पृथ्वी में कहीं भी मेरी मृत्यु न हो, तो उसे एक पक्षी उड़ा ले गया आकाश में उसकी मृत्यु हुई। एव असुर ने वर माँगा, मेरी मृत्यु पृथ्वी पर न हो, समुद्र में हो, इसीलिये वह कभी समुद्र के समीप नहीं जाता था, पर्वत पर रहता था। सहसा वही समुद्र उमड़ आया पहाड़ ढूबने लगे। उसे एक बड़ा भारी द्वीपकार कछुआ दिखाई दिया। जल से बचने को वह उसकी पीठ पर चढ़

गया। तुरन्त कछुआ जल में डूब गया और वह असुर मर गया। इस प्रकार एक नहीं, उसके असंख्य दृष्टान्त हैं। संसार में जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु अवश्यमभावी है। प्राणी जब उत्पन्न होता है, मृत्यु को साथ लिये ही उत्पन्न होता है। समय आने पर कोई न कोई निमित्त बन जाता है। बिना मृत्यु के कोई किसी को मार नहीं सकता। जब मृत्यु आ जाती है, तब किसी का उससे बचा नहीं सकता। महाराज नहुष को जन्म के समय ही हृष्ट वैश्य अपना मारने वाला समझ कर उठा ले गया था, किन्तु वह उन्हें मार न सका। जिस रसोइये को उसने उसे मार कर बनाने को दिया था, वह उसे वशिष्ठ जी के आश्रम पर छुड़ आया। महाराज सगर जब गर्भ में थे, तभी उनकी माता की सपत्नियों ने उसे विष दे दिया था, कि गर्भस्थ बालक मर जाय। किन्तु उनकी तब मृत्यु नहीं थी, वे गर के सहित ही माता के गर्भ में उत्पन्न हुए। इसलिये उनका नाम सगर रखा गया। वे महान प्रतापी हुए। जब उनका समय आया, तब वे भी काल-कवलित हो गये। महाराज प्रियव्रत, माध्याता गृध्र, बलि रावण ये एक-से-एक बली राजा हुए हैं। मृत्यु ने उनकी भी नहीं छोड़ी। 'घाज हो धथवा सो वप' के पश्चात्, प्राणिमों की मृत्यु तो निश्चित ही है। प्राणी तो कर्मों के अधीन है। जिस देह का प्रारब्ध कर्म समाप्त हो गया, फिर वह लास प्रसरण करने पर भी नहीं टिक सकता। इस शरीर को त्याग कर उसके अभिमानों जीव को अपने कर्मानुसार विवश हुए पुनः अन्ध देह ग्रहण करनी पड़ती है। अतः मृत्यु के भय में अन्ध करणा, पाप करना, उचित नहीं।"

कंस ने कहा—“महाराज वसुदेव जी! प्राणि-माधुरा \* वचने का यथासाध्य प्रयत्न करता है। मैं तो मनुष्य \* ३

हैं, घूर हैं, आप एक चीटो को उँगली से दबाइये, वह व्यक्ति भर वचने की चेष्टा करेगी, काट छावगी और शरीर में प्राण रहते वचने के उपाय काम में लायेगी। पुरुष की पता लग जाए कि इस कारण मेरी मृत्यु बंदी है, तो वह उस कारण को मिटाने का यथासाध्य प्रयत्न करेगा ही। जब मुझे पता लग गया, कि इसी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक से मेरी मृत्यु है तब मैं इस शक्ति को अभी क्यों न काट दूँ ? रोग के मूल को ही क्यों न मेट दूँ, जिससे उपद्रव उठे ही नहीं ?”

धनुदेव जी ने कहा—“राजन् ! मृत्यु को मेटने की सामर्थ्य किसमें है ? जीव तो मरने के पूर्व ही घपने लिये दूसरी मोनि तैयार कर लेता है, शरीर त्याग के पूर्व ही उसका दूसरा शरीर बन जाता है, जे से हम पिछले पर को तब उठाते हैं, अब अगले को जमा लेते हैं। आपने तुणजजूका नाम एक कीड़ा देखा होगा—वह जब अगले पर को एक डाल पर जमा लेता है, तब पहली डाल को छोड़ता है। उसी प्रकार जीव अपने कर्मनुसार एक देह से दूसरी देह में जाता है। नये शरीर से नरक स्वर्ग भोगता है।”

कंस ने कहा—“आप यह कंसो बातें कह रहे हैं ? किसी ने जिस देह से पाप-पुण्य किया है, वह देह तो वही पड़ी रह जाती है। उसके क्रिये दुख सुख को भोगता है दूसरा शरीर। यह तो बड़ी बात हुई कि देवदत्त ने किसी का वध किया, मज्जत्त को फाँसी पर लटका दिया। दुख-सुख उसी देह को होना चाहिये, जिससे पाप-पुण्य किया।”

धनुदेव जी ने कहा—“भैया, तुम सोचो, क्या भला-बुरा कर्म शरीर करने है ? शरीर तो जड़ है, उसमें स्वयं भला बुरा करने की शक्ति नहीं है। दुख-दुख तो बर्तों के समिमान से होता है।

राजा की सेना को जय पराजय तो राजा की ही मानी जाती है। इसका तो तुम नित्य ही सोते समय अनुमान करते हो। स्वप्न में हमें जय के सकारो के कारण देखे सुने पदार्थ दिखाई देते हैं। स्वप्न में कोई बन्दर आता है, हमें बाट लेता है तो बड़ा दुःख होता है। अब आप सोचें। स्वप्न में जो बन्दर आया है, उसके देह नहीं है हमें जो उसने आटा है, उसका चिन्ह भी हमारे जाग्रत के शरीर में कहाँ नहीं है। फिर भी हमें दुःख तो होता ही है। जागने पर भी चित्त घबकता रहता है। इससे अनुमान होता है कि जीव ने वह दुःख स्वप्न शरीर से भोगा। दुःख-सुख, चाहे स्वप्न-शरीर से भोगे या जाग्रत शरीर में, स्थूल शरीर से भोगे या सूक्ष्म शरीर से, भोक्ता तो जीव ही है। इस स्वप्न शरीर में जाग्रत शरीर के सट्टा आत्म भाव हो गया था। उसे भी जीव ‘मेरा ही शरीर’ कहता था। उस समय वह अपने जाग्रत काल के शरीर का भूल गया था। इसी प्रकार इस शरीर का अन्त काल उपस्थित होने पर वह विविध प्रकार के विकारों कासा मन अपने प्रारब्ध कर्मों की प्रेरणा से जैसी भावना करता है वैसे ही मन जाता है। माया द्वारा पचभूतों के विविध प्रकार के निर्मित शरीरों में वह जिस-जिसकी ओर दौड़ता है, उनमें जिस-जिसको उपलब्ध करता है, उसी-उसी में आत्म भावना करके वह अन्त ग्रहण करता है।”

कंस ने कहा—“जीव अपने आप कर्म वरके व्यर्थन में क्यों फँस जाता है? इन सार्वत्रिक विषयों में प्रागल्भ्य होकर वह औरतों के चक्कर में क्यों पड़ जाता है?”

यमुदेवजी ने कहा—“जीव का स्वभाव ही वैयन का नहीं है। वह तो निरपेक्ष है। किन्तु माया से रचे हुए इन मायिक विषयों के सतस से चञ्चल-सा प्रतीत होता है। जैसे किसी

परात में जल भरा है, उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। परान की जलवायु लगने से हिल रहा है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा भी हिल रहा हो। सरोवर के जल में वायु लगने में हिलोरे उठना है, तो उसमें प्रतिबिम्ब सूर्य भी लहरों के साथ हिलता हुआ सा दिखाई देता है। वास्तव में सूर्य-चन्द्र में तथा उनके प्रतिबिम्ब में चञ्चलता नहीं है। यह तो जलवायु के ससग में प्रतीत होनी है। उसी प्रकार जीव में चञ्चलता नहीं, वह माया रचिन पदार्थों के समर्थ में माहित-सा हो जाना है। जीव मरने से डरता है। आप ही सोचिये, जीव को कीत मार सकता है। वह तो अमर है। रही शरीर की बात। सा वह तो स्वतः ही क्षणमग्न है। इन्हीं सब बातों को सोचकर कल्याणेश्वर जीव को बन्धों की सेतु न करना चाहिये। जो दूसरों से द्वेष करता है, उसे स्वयं दूसरों से भय रहता है। मनुष्य जैसा होता है, वैसा ही काटता है। इसलिये भैया, तुम अपनी इस बहाने के बंधन में निवृत्त हो जाओ। राजन्! सोचिये छोटी बहन को कभी हत्या की जाती है। देखो, यह कैसे भोली भाली है। देखने में कठपुतली के समान, सजी-सजाई गुड़िया के समान, दिखाई देती है। छोटी बहन तो पुत्री के समान मानी गई है। आप ता शत्रिय है। जो प्राणियों को दुःख में बचावे, दोनों को रक्षा करे वही शत्रिय है। यह बेचारी बालिका कैसे कृपिणी है! अभी अभी इसका विवाह हुआ है। यह वैवाहिक माङ्गलिक चिह्नो में युक्त है। वीर होकर ऐसी बन्धों का घस ? छि-छि ! यह तो अल्पम हो क्षणिक काम है। आप ऐसा पाप मत करे, इस अवस्था को न मारे।'

सुतजी कहते हैं—'मुनियो ! इस प्रकार वसुदेव जी अपने कृतियों से शर्म, दाम और भेदादि नीति का अवलम्बन

करके कंस का विविध प्रकार से समझाया, किन्तु वह तो खल  
था, घरीर को ही सब कुछ समझने वाला असुर था। वह अपने  
निश्चय से हटा नहीं। जब उसने देवकी के वध का निश्चय  
बदला नहीं, तब बसुदेव जी ने दूसरी युक्ति उस दुष्ट के हाथ से  
देवकी को बचाने की सोची।

छप्पय

शूर कुर्त्तान प्रवीन भोज कुल भूषण सज्जन ।  
स्यौ कायरता करहु बहिन कुं मारो राजन ॥  
अरे जीव तू नित्य देहु क्षणमंशुर नरवर ।  
जनमो सो मूव मरे देर यह अथवा सत्वर ॥  
भगिनी भोली भययुता, अबला दुहिता के सरिस ।  
अर-थर कोपति देहु अब, अमयदान तनि द्वेष रिष ॥



## वसुदेव जी की प्रतिज्ञा

[ ८२० ]

न ह्यस्वास्ते भयं सौम्य यद् वागादृशरीरिणी ।  
पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥३॥  
(श्रीमा० १० स्क० १ प्र०, ५४ श्लो०)

छप्पय

कंस कहे—'वसुदेव ! सुनी नहीं नम की बानी ?  
कौन मृत्यु के प्यार करे प्राणी अज्ञानी ?  
सुनि बोले वसुदेव—'देवकी ते नहि कलु डर ।  
अष्टम सुत ते मृत्यु कहीं सोई भय की घर ॥  
अच्छा, हौ यह मन करहुँ, अष्टम सुत की का कथा ।  
जन्मत सुत सौगै सबहि, होहि न तुम मूँ अथ व्यथा ॥

जो बात बीत गई यह सो बीत ही गई । उसके लिये सोच करना व्यर्थ है । जो होने वाली है, वह अभी भविष्य के मर्म में निहित है । उसकी चिन्ता करके दुःखित होना मूर्खता है । मनुष्य को तो सदा वर्तमान की चिन्ता करनी चाहिये । मन में कोई पाप करने का प्रयत्न दुःख ही जाय, तो जैसे वने तैरे, उस

ॐ श्री वसुदेवजी कहते हैं—'राजन् ! जब कस किसी प्रकार भी देवकी के वध से निवृत्त नहीं हुआ, मगुरुय जो उसने बोले—'ह सौम्य ! माकाशवाणी ने जो कुछ भी कहा, उसने मनुष्यार तुम्हें देवकी से तो साक्षात् कोई भय है ही नहीं । तुम्हें तो उगवे पुत्र में भय है । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि एक ही पुत्र को मारी, देवकी ने सब पुत्रों को मैं तुम्हें दे दूँगा ।'



समय को टाल देना चाहिये। इन्हीं प्रकार पुण्य करने की इच्छा हो और अपने पास द्रव्य हो तो उसे तराश कर देना चाहिये। फिर यह विचार करे, कि अभी हम सब व्यय कर देंगे, तो आगे क्या होगा। भगवान् क' यहाँ कुछ कमो तो है ही नहीं, जो उसका भण्डार चुक जाय। जिसने थप दिया है वह आगे भी देगा। सारास यह है कि बुद्धिमान व्यक्ति ता' तयश्चैव कर्त्तव्य यह है कि वतमान को बना ले भूत भविष्य से निजा ग्रहण करे चिन्ता न करे।

भूतजी कहते हैं—“भूमियो ! जब ब्रमुदेव जी का यो समय प्रकार समझकर हार गये, किन्तु उस दुष्ट की बुद्धि में एक भी बात न बैठो तब व सोचन लगे—‘यह दुष्ट अब समझाने बुझाने से तो मानन का नहीं। इसने अपनी बहन की एक हाथ से चाटो पकड़ रक्ती है, दूसरे हाथ में नख्न गरबात है। यने तो यह मानेगा नहीं। जैसे भी मान लेंसे इससे सब मना लेना चाहिये। इस तराल आई हुई वतमान विपत्ति को जैसे खने लगे टारा देना चाहिये। होगा तो वही, जो होने वाला होगा।”

मनुष्य का अधिकार तो बर्ध करने मे है। का भी अभिमत हो कर रहा है। बुद्धिमान पुरुष का जहाँ तक पशु मर्ग, जहाँ तक उसका बल पुरुषार्थ काम दे, तहाँ तक उसे आई हुई भुक्त को टालना ही चाहिये। प्रयत्न करने पर भी यह न टग ता फिर उसमे किसका दोष है ?

अब एक ही उपाय है। मैं इससे यह प्रतिज्ञा कर रहा हूँ। देवकी के गभ' से जो पुत्र होगे, उन सबको मैं गुप्त रहूँगा मरूँगा। मेरा विश्वास है इस बात को यह रयीगा। इसमे उसे कुछ आपत्ति न होगी। इससे अतिशय

उराय है भी तो नहीं। इस समय आगे की नहीं सोचनी है, मुख्य कार्य इस भ्रमला के प्राण बचाना है।

कोन जानता है, जब तक देवकी के पुत्र हो, तब तक यह दुष्ट कंस मर ही जाय। न मरे तो इसकी बुद्धि ही बदल जाय, वहिन भानजो पर दया ही आ जाय।

अथवा मेरे पुत्र ही उत्पन्न न हो। सम्भव है कन्या ही कन्या उत्पन्न हो जाय।

आकाशवाणी अन्यथा भी नहीं हो सकती। सम्भव है, मेरे पुत्र उत्पन्न होकर दाने मार ही डालें, तो समस्त यदुकुल का कोड ही धुल जाय, सब का सङ्कट हो जट जाय।"

इन्हीं सब बातों को सोच-विचार कर वसुदेव जो बोले—  
“अच्छा, राजन्! हमारे एक बात सुने। आप इस बेचारी देवकी को क्यों मारना चाहते हैं? इससे तो आपको कोई भय नहीं। आकाश-वाणी ने यह तो नहीं कहा कि देवकी आपका बध करेगी।"

सूखी हंसी हंसते हुए कंस ने कहा—“अजी, इनके पुत्र से तो भय है! यह तो एक बात हुई—चाहे बेल से भय अथवा उमके फल से भय। बेल ही न रहेगी, तो उम पर विषयुक्त फल ही न रहेंगे।"

वसुदेव जो ने कहा—राजन्! बेल धनी हो छाया वाली हो और उमके फल बिदेले हो, तो बुद्धिमान को उनके फलों को नष्ट कर देना चाहिए। इसी प्रकार आप देवकी के आठवें पुत्र को मार डालें। आपको तो आठवें पुत्र से ही भय है। किन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, इसके गर्भ से जितने भी बालक होंगे, मैं उन सब को लाकर आपको दे दिया करूँगा। फिर चाहें आप उन

सब को मार डालें, चाहे उनमें से आठवें को ही मारें। यह तो आपकी इच्छा के ऊपर निर्भर है।

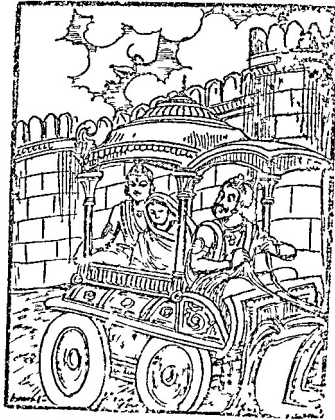
भावों की प्रबलता ! यह युक्ति कस के मन में बैठ गई।  
उपन सोचा— 'वसुदेव जी सत्य ही तो कहते हैं। इस बेचारी-बच्ची ने तो मेरा कुछ बिगाड़ नहीं है। आकाशवाणी का तो कथन है कि इसका आठवाँ पुत्र मुझे मारने वाला होगा। मैं उसे पैदा होते ही मार दूँगा। यह कहो कि वसुदेव जी "मे" कहो छिपा लेंगे तो पहले तो वसुदेव जी कभी असत्य भाषण करते नहीं। मानलो, छिपाने का प्रयत्न भी करें, तो क्या मुझसे कोई कुछ छिपा सकता है ? इसलिये वसुदेव जी का प्रस्ताव-युक्ति युक्त है।' यही सब सोच समझकर उसने करवाल की कोश में रख लिया। देवकी की चोटी उसने छोड़ दी और बोला— देखो, जीजाजी, गड़बड़ी न हो। समय-समय पर मुझे नुतो को समर्पित करते रहना।'

वसुदेव जी न सरलता के स्वर में कहा— 'ना, भैया ! गड़बड़ी बड़ी होगी ! क्या तुम्हें मेरा विश्वास नहीं ?'

कस ने कहा— 'आप पर मुझे विश्वास न होता तो मैं अपनी मृत्यु की जननी इस देवकी को छोड़ता ही बंधो। किन्तु पुत्र स्नेह से ऐसा होता है कि मनुष्य सब प्रतिज्ञायें भूल जाता है। मैं तो आपको बात मान ही लो।'

वसुदेव जी उसकी प्रशंसा करते हुए बोले— 'क्या कहना है आपकी सज्जनता का ? आपके सहस्र उत्तम पुरुष और कौन होगा ? भगवान् आपका कल्याण करें।' यह कहकर वसुदेवजी देवकी को साथ लेकर उसी रथ पर अपने घर चले गये। वसुदेवजी से उदास मन, दूसरे रथ पर चढ़कर अपने घर लौट आया। इतर काल क्रम से सर्व देवमयी देवकी देवी ने अपने गर्भ

से प्रत्येक वर्ष एक-एक तरह के आठ और एक मन्त्रा को जगा दिया ।'



इस पर दोनों जो ने कहा भूतजी । क्षमा करें, हमें एक दारा है । याव तो पीछे बठ आये हैं, कि उस समय पृथ्वी पर यमुदेव जी के समान सदाकारी धर्मिणा पुरुष दूसरा कोई था । नहीं किन्तु हमें ता इस बात में सन्देह होना है । देखिये बारह तिनसां तो उनके घर में भी, सैकड़ों पुत्र भी होंगे, बहुत

से विवाह योग्य भी होंगे। फिर भी तिर पर मोर बाँधकर जामा पहिनकर, दूल्हा बनके, तेरहवाँ विवाह करने वे आ धमके। इससे हम उन्हें कैसे जितेंद्रिय और सदाचारी समझें। जब वे यह बात जानते थे कि देवकी के जो पुत्र उत्पन्न होंगे, कदा मार हो गेलिया तब फिर उन्होंने देवकी जी से पुत्रों को उत्पन्न हो बचो बिया ? दो चार वर्ष में पृथ हो जाता, सो भी बान नहीं। कोई वप नहीं गया जिससे देवकी जी ने पुत्र पैदा न किया हो। अब हम ऐसे धार्मिकों को कैसे सदाचारी और जितेंद्रिय नहें ?”

महं मुनकर सुतजी हँस पड़े और बोले—“बड़ी मुस्कराका आपने की भगवन् ! ये कलियुगी अल्पवीर्य शुद्ध प्राणी ऐसी ही शका करते हैं। इनका हृदय इतना छुद होता है कि ये उससे ऊँची बात सोच ही नहीं सकते। भावन् ! पहले लोगों ने अमित वीर्य दाता था उग्रका प्रभुमान ये कलियुगी अर्ध वीर्य प्राणी नहीं कर सकते। इन लोगों को एक पत्नी को सन्तुष्ट करना ही कठिन हो जाता है। पहले लोगो ये संकटों सहस्रो पत्नियाँ होती थी और वे सभी को सन्तुष्ट रखते थे। मर्यादा और सिद्धान्त की बात तो दूसरी है किन्तु नियमानुसार एक पुरुष को बहुत पत्नियाँ हो सकती हैं लेकिन एक पत्नी के बहुत पति नहीं हो सकते। एक स्त्री एक वप में एक ही संतान उत्पन्न कर सकती है। वरदान आदि इससे अपवाद हैं किन्तु सामान्यतः पुरुष एक वप में तीन से साठ और इससे अधिक भी संतान उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखता है। फिर बसुदेव जी जैसे पराक्रमी सम्राट वीर्य व्यक्ति के यहाँ तेरह पत्नियाँ थी, तो इसमें बुराई की बात ही कौन सी थी ?”

रही संतान न उत्पन्न करने की बात। सो, गृहस्थों के लिये

ऋतुमती भार्या के समीप गमन न करना एक बड़ा भारी पाप है। सन्तान की इच्छा वाली ऋतुमती भार्या के समीप उल्टे जाना ही चाहिये। वेद की आज्ञा है “ऋतो भार्यामुपेयात्।” ये तीन शब्द हैं—ऋतुकाल भार्या, और जाना। तीनों में एक लगाव है। अर्थात् ऋतुकाल में ही भार्या के समीप जाना चाहिये, अन्य समय में नहीं। अपनी ही भार्या में गमन करना चाहिये अन्य में नहीं। जाना ही चाहिये, ऋतुकाल को व्यर्थ न बनाना चाहिये। गर्भ रहें न रहें, यह ईश्वरेच्छा है।

वसुदेव जो अमोघवीर्य थे, उनका गमन कभी व्यर्थ सा होता ही नहीं था। इसीलिये उनके इतनी सतानें या धीर इसी वेद वाक्य की आज्ञा से वे ऋतुकाल में गमन करते थे, उसी से देवकी जी के नौ सन्ताने हुए हैं।

शौनक जी ने कहा—“सूतजी! हम यह पूछते हैं कि अच्छा, उनका पुत्रात्पादन धर्म था फिर भी उन्होंने देवकी जी को बचाया क्यों? आठ पुत्रों को लेकर एक पत्नी को बचाना यह कहाँ का न्याय है?”

सूतजी ने कहा—“अब महाराज इस विषय में तो हम बराबर कहें। वसुदेव जी ने तो उपस्थित मृत्यु की ही टाला। उन्होंने यह नहीं सोचा था कि मुझे पुत्र देने ही होंगे। उन्होंने अनेक कल्पनायें की थीं फिर सोचा—“यह कस समस्त यादवों की यातना देगा। इसके बदले मेरे आठ पुत्र ही मारे जाएँ तो सब का भला होगा। कम का बच सभी यादव चाहते थे। वह दुष्ट था खल प्रवृत्ति का था। कीद भी उससे सम्बन्ध नहीं था। यदि पुत्रों को लेकर भी जाति का भला हो तो पुत्रों की बलि देना श्रेष्ठ है। वसुदेव जी का सा व्यस्यन उच्च प्रादर्श रहा होगा।”

शौनक जी ने कहा—“हाँ, सूतजी! इस प्रकार का प्रादर्श

तो सहाहनीय है। फिर भी एक शका हमारे मन में रह गई। देखिये ससार में पुत्र शोक सबसे बड़ा बताया गया है। स्वाभाविक मृत्यु से भी जिसका पुत्र मर जाता है उसे भी कितना म्लेश होता है। सो, वसुदेव जी तो अपने छ-छ पुत्रों को अपने हाथ से मारने को दे द्याये और कस ने उनके सामने—उनके देखते-देखते—उनका वध विया। इस इतनी भारी विपत्ति को आठ-आठ बार वसुदेव जी ने सहन कैसे किया ?”

इस पर सूतजी बोले—‘महाराज, धर्म में बड़ी शक्ति होती है। धार्मिकता सहनशीलता है। तो सिखाती है ? जो धर्म पर दृढ़ है, वे धर्म रक्षा के लिये कौन से कठिन से-कठिन दुखों को नहीं सह सकते ? अर्थात् वे धर्म के लिये सब कुछ सह सकते हैं।’

शोनक जी बोले—‘सूतजी वसुदेव जी को तो आशा लगी ही रहती होगी, कि कम सम्भव है, मेरे इस बच्चे को छोड़ दे या कोई दया करके छोड़ा दे।’

सूतजी बोले—‘महाराज जिनकी तत्त्वाधान में पूर्ण निष्ठा हो गई है वे किसी भी बात की अपेक्षा नहीं रखते।’

इस पर शीघ्रता से शोनक जी ने पूछा—‘अच्छा, सूतजी ! हम एक बात पूछते हैं। कस अन्ततोगत्वा मनुष्य ही तो था। वह अपनी बहन के सघ-जात छोटे-छोटे निरीह बच्चों को सहसा मार कैसे डालता था ? क्या उस दया नहीं आती थी ? वह ऐसे क्रूर कर्म में कैसे प्रवृत्त होता था ?’

हँसकर सूतजी बोले—‘महाराज ! आप खलो भी कुछ न पूछें। ससार में ऐसा कौन-या कुकर्म है, जिसे नीच पुरुष न कर सकते हों। वे अपने माता-पिता, भाई, पुत्र, सगे सम्बन्धी, गुरुजन, इष्टमित्र—सभी वा मित्रों में होकर वध कर सकते हैं, उन्हें विपद दे सकते हैं, दूली पर चढ़ा सकते हैं, माता, बहन-

चेटियों प्रीत पुत्र-अपुत्रों के साथ भजन कर सकते हैं, अक्षय्य, सुरापान तथा जो भी नीच से नीच कार्य हैं, उन्हें इन्द्रिय सुख, जीवन सजा राज्य के लिये प्रसन्नता पूर्वक कर सकते हैं।"

शौनक जी ने फिर कहा—“सूतजी ! मुझे तो भगवती देवी देवकी के ऊपर दया आवी है। वे अपने हृदय के टुकड़े को अपने ही हाथ वध कराने को कैसे वेती होंगी ?”

सूतजी आह भरकर बोले—“महाराज, यदि देवी देवकी में इतनी ही क्षमता न होती, यदि उन्होंने अपनी इन्द्रियो पर इस प्रकार विजय प्राप्त न कर ली होती, तो उन्हें भगवान् की जननी बनने का देव दुर्लभ पद कैसे प्राप्त हो सकता था ? जितेन्द्रिय पुरुषों के लिये किस चरु का त्यागना कठिन है ! वे तो सत्य के लिये, धर्म के लिये, पुत्र परिवार तथा प्राणी तक का परित्याग करने में अगाध पौरुष नहीं करते।”

शौनकजी ने प्रछा—“हाँ, तो सूतजी ! हमें सब कथा सुनाइये। वसुदेव जी ने किस प्रकार अपने पुत्र ला-लाकर कस को दिये ?”

सूतजी बोले—“अच्छी बात है, महाराज ! अब मैं उसी कथा को सुनाता हूँ। जिस प्रकार वसुदेव जी ने कस को अपने पुत्र प्रदान किये थे, वह भी सुनाता हूँ।”

छप्पय

कस करथो विश्वास धरि न बिचरि नहि मारी ।  
आये घर वसुदेव देवकी दुस्ति विचारी ॥  
प्रथम पुत्र वसुदेव देवकी जाया जायो ।  
भयो न मन मह भोद, हरष हिय मह नहि छायो ॥  
अत कोमल अति सरल शिशु, सुन्दर सरसिज-सम पदन ।  
सुमिरि कस पन मातु को, अति ई कतर भयो मन ॥



## वसुदेव जी द्वारा कंस को पुत्र प्रदान

[ ८२१ ]

कीर्तिमन्त प्रथमजं कसायानकदुन्दुभिः ।  
अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥३॥  
( श्रीमा० १० स्क० १ अ० ४७ श्लो० )

छप्पय

बोले श्रीवसुदेव—प्रिये ! मत मोह बढ़ाओ ।  
निज पन पूरन करूँ कुमर कूँ अथई लाओ ॥  
विलसि हिये तैं लाइ प्याइ पय सुत सुत नृम्यो ।  
कंपित कर है गये मातु को मायी घूम्यो ॥  
विलसत जाया छोड़ि सुत, लयो अक वसुदेव पुनि ।  
मूर कंस के गये टिंग, विह्वल्यो सुत को जन्म सुनि ॥

साहित्य में जहाँ भाव और विभाव का सखन है वहाँ एक भाव-सन्धि बतलाई गई है । दो विरोधी भाव एक साथ ही हृदय में आ जायें, उससे भाव सन्धि बहता है । पुत्र का जन्म हो और उसकी जननी की दशा चिन्ताजनक हो तो पिता के मन में पुत्र-जन्म का हर्ष जन्म भाव भी है और पत्नी के रुग्ण होने का शोक भी है । किन्तु भावी दुःख का प्रथम ही पता हो तो वह सुख भाव अत्यधिक दुःख का ही हेतु हो जाता है, उससे भावों की सन्धि न होकर वह सुख दुःख का ही चढ़ाने वाला होता है ।

श्लो० की सुश्रवण जी कहते हैं—' राजन् ! वसुदेव जी ने कपना कीति-  
'मान् नामक' प्रथम पुत्र पित्त में द्रव्यत दुःख मानकर भी झूठ से द्रव्यत  
बर्तने का कारण कव का शौर दिया । '

जैसे किसी को प्रथम से ही बता हो जाय, कि अमुक लड़की विवाह होते ही विधवा हो जायगी तो उसका विवाह-जन्म सुख, दुःख की ही वृद्धि करता है। वह विवाह कर्त्तव्य-पालन की दृष्टि से भले ही किया जाय, किन्तु उसके करने में कोई ध्यानन्द नहीं, विवाह सम्पन्न होने पर एक निश्चितता का अनुभव नहीं, वह तो जान बूझकर विपत्ति के मुख में प्रवेश करना है। ऐसे दुःखजनक कार्य भी कर्त्तव्यवश, धर्म के भय से, समाज के आतंक से, मनुष्य-स्वभाव वश करने ही पड़ते हैं। ज्ञानी-अज्ञानी-दोनों को ही ऐसी स्थिति में से होकर निकलना पड़ता है, अन्तर इतना ही है, अज्ञानी रो-रोकर दुःख को और बढ़ाते हैं, ज्ञानी अपने ज्ञान के द्वारा चित्त को समझा लेते हैं।

श्री सूतजी कहते हैं—‘मुनियो! वसुदेव जी देवर्क को विवाह करके अपने घर ले आये। समय आने पर भगवती देवकी ने गर्भ धारण किया। प्रथम गर्भ धारण कर लेने पर घर की स्त्रियों को, पति-पत्नी को, दोनों के परिवार वालों को तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों को कितनी प्रसन्नता होती है। स्थान स्थान से गभियों के लिये उपहार आने लगते हैं। घाठवें-नवें महीने से ही उत्सव आरम्भ हो जाता है। गभियों के मातृ गृह से सुन्दर-सुन्दर मिठाइयाँ, वस्त्रों के लिये खिलौने आदि आने लगते हैं। प्रीतिभोज होता है और मन में चितना उत्साह, कितनी उमङ्ग कितनी आशाएँ, कितनी अस्लायाएँ होती हैं, इन्हें बिना गृहस्थ बने, केवल सुन पढ़कर कोई अनुभव नहीं कर सकता। श्री अब तक तो पत्नी थी भार्या थी अब वह जाया हो जायगी। उसका पति उसके पैर से स्पर्श पुत्र वन कर उत्पन्न होगा। अब उसका मान-सम्मान, अधिकार—सब बढ़ जायेंगे। अब वह माता हो जायगी। उसका पति भी उसे अब ब्याज से, पक्षान्तर से, माता

कहने लगेगा। वह मेरी घरवाली, मेरी पत्नी, या मेरे घर से, न कहकर लला की माँ कहेंगा। बच्चे से यह न कहकर कि जा मेरी पत्नी के पास जा, यही कहेंगा—“माँ के पास चला जा। माँ को पुकार।” इसीलिये मातृ-पद को अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण बताया है। जो पत्नी माता बन गई, अब वह तम्बा घू घट नहीं मारती, पति से डरती भी नहीं। अब तो वह जननी हो गई। प्रथम गर्भ धारण करने पर स्त्रियों को अत्यन्त प्रसन्नता होती है, उसी प्रसन्नता में तो वे गर्भ धारण के विविध कष्टों को, प्रसव की असह्य पीड़ा को, सहर्ष सहन करती हैं, किन्तु भगवती देवकी को प्रथम गर्भ धारण करके भी प्रसन्नता नहीं हुई। वे जानती थी, “मेरे पति सत्य-प्रतिज्ञ हैं। जो बात वे एक बार मुँह से कह देंगे, उसका प्राणों से पण लगाकर पालन करेंगे। उस प्रण से वे कभी भी विचलित न होंगे। मेरे जो सन्तान होंगी, उसे वे बिना मर्गि, मेरे भाई वस को दे आवेंगे। वह इतना क्रूर और निर्दयी है कि वह बच्चे को देखते ही मार डालेगा। वह असुतृप्त-असुर है। प्राणों का उसे अत्यन्त मोह है। मृत्यु से बचने के लिये वह सब कुछ कर सकता है। उससे कुछ अच्छी आशा रखना निराशामान्य ही है। इन्हीं सब बातों को सोच सोचकर देवकी देवी दुःखी बनी रहत। इस प्रकार शनैः शनैः नौ महीने बीत गये। दशवें महीने में उन्होंने एक अत्यन्त ही सुन्दर पुत्ररत्न का प्रसव किया।

दासी ने वसुदेव जी से बाहर आकर कहा—“बधाई है महा-राज ! छोटी रानी जो के यहाँ पुत्ररत्न का जन्म हुआ है।”<sup>१)</sup> अग्यमनस्क भाव से वसुदेव जी ने कहा—“काहे का बधाई है, हमारी तो लोकाह्लादी है। सब मुझे बुरा कहें, कि यह पुत्रपाती है। किन्तु, वरूँ क्या, कर्त्तव्य का पालन तो करना

हो पड़ेगा। प्रण तो निमाना ही होगा। धन विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं। जितना ही विम्बव होगा, उतना ही मोह बढ़ेगा।” यह कहकर उन्होंने अङ्गरत्ना पहना, पगड़ी धारण की, उस पर चोरा बाँधा, कर्लमी लगाई, दुपट्टा कन्धे पर डाल कर वे भीतर गये और बोले—‘प्रिये ! क्या समाचार है ?’

देवकी देवी ने कण्ठ के साथ कहा—‘प्राणनाथ ! पुत्र उत्पन्न हुआ है। देखिये, कंसा सुन्दर है, कितना सुकुमार है, कंसा भोला-भाला इसका मुख है। यह रोता नहीं, हँस रहा है। जन्म से ही इसका मुख में दात हैं।’

\* अत्यधनस्क भाव से वसुदेव जी ने कहा—‘प्रिये ! मोह मत बढ़ाओ। बच्चे को बहुत मत खिलाओ। श्रोत्रि का ध्यान लगाओ, धन विलम्ब न लगाओ, बच्चे को लाओ। मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार इसे कस राय को दे आऊँ।’

देवकी देवी ने अघोर होकर कहा—‘प्राणनाथ ! वह मेरा भाई तो बड़ा क्रूर है, आप उसे इस भोले-भासे बच्चे को दें आवेंगे, तो वह इस मार डालेगा। इतने सुन्दर भोले-भासे बच्चे को आप जान बूझकर काल के मुख में क्यों डालना चाहते हैं ?’

वसुदेव जी ने कहा—‘प्रिये ! हमने उससे ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी।’

देवकी जी ने अघोर होकर कहा—‘आपने उससे इतनी कठिन प्रतिज्ञा क्यों कर ली ?’

वसुदेवजी ने कहा—‘यदि ऐसी प्रतिज्ञा न करता, तो तुम्हारे प्राण कौनसे बचते ?’

देवकी देवी ने रोते-रोते कहा—‘मैं इन प्राणों को धारण करके क्या करूँगी ? पुत्र को मरवाकर ऐसे जीने से क्या लाभ। आपने मुझे क्यों बचाया ?’

वसुदेव जी ने हृदय के साथ कहा— प्रिये ! अब इन व्यर्थ की बातों से क्या लाभ ! पुत्र तो हमें कस को दना ही होगा— स्वतः न दोगे, वह उसे बलपूर्वक मंगा लेगा ! जितनी ही अधिक देर बच्चा रहेगा, उतना ही मोह बढ़ेगा ! मैं जितना असत्य से डरता हूँ, उतना मृत्यु से भी नहीं डरता ! मेरे ध्वज प्रमत्त न होने पावें, मैं कस के सम्मुख विश्वासघाती न बनने पाऊँ ! मेरे ऊपर उसने विश्वास किया है, अतः मुझे भी अपनी प्रतिज्ञा धर्मपूर्वक पूरी करनी चाहिये ! लाओ, पुत्र का मुझे दे दो ! यह कह कर वसुदेव जी ने दोनों हाथ आग कर दिये ! देवकी देवी के हाथ काँच रहे थे, हृदय फटा जा रहा था ! नेत्र बह रहे थे शरीर में रोमाञ्च हो रहा था, वसुदेव जी उनकी ऐसी दशा देख-समझ गये, किन्तु कस्तूर्य ने उन्हें विवश किया ! बलपूर्वक पत्नी की गोद से बच्चे को ले लिया और उसे लेकर चल दिये ! देवकी देवी 'हा पुत्र ! हा पुत्र !' कहती हुई सूझिन होकर घडाम से घरती पर गिर पड़ी ! किन्तु, वसुदेव जी ने पीछे फिरकर नहीं देखा, वे हृदय कड़ा करके बच्चे को लेकर वस की राजसभा में चल दिये !

रथ पर बैठकर वसुदेव जी बच्चे को लिये हुए कुछ ही समय में कस के सभा भवन में पहुँचे ! उस समय कस अपने कुर-कर्मा मन्त्रियों के साथ बैठा था ! उसी समय बच्चे को लिये वसुदेव जी को आते देखकर अवहेलना की हँसी हुई ! कस बोला— 'आइये वसुदेव जी ! आइये ! कहिये सब कुसल मङ्गल है न ? आज तो बहुत दिनों पर दिखाई दिये ? स्वास्थ्य तो अच्छा है न ? यह क्या ले आये ?'

वसुदेवजी ने सरलता के साथ कहा— 'यह बच्चा है, देवकी के गर्भ का यह प्रथम बालक है !'

क'स ने अनजान की भोति कहा—'अच्छा, देवकी के बच्चा हुआ है ? बड़े मङ्गल की बात है ! आप इसे यहाँ कैसे ले आये ?'  
 वसुदेव जी ने श्रम्यमनस्क भाव से कहा—'मैंने तो आपसे प्रतिज्ञा की थी, कि देवकी के सब पुत्रों को मैं आपको दूँगा इसीलिये इसे आप को देने आया हूँ ।'



यह सुनकर ठहाका मारकर हँसते हुए क'स ने कहा—  
 'वसुदेव जा ! आप बड़े भोले हैं ! अजी, मेरा इस बच्चे से क्या

प्रयोजन ? आकाशवाणी ने तो देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक से मुझे भय बताया था। अतः इसे ले जाओ। जो आठवाँ बच्चा हो, उसे लाना इसे लेकर मैं क्या करूँगा ?”

यह सुनकर वसुदेवजी ने कहा— ‘वहुत अच्छा, जैसी आपकी आज्ञा। मैं तो अपनी प्रशिक्षा अनुसार इसे लाया था।’ यह कहकर वे बच्चे को लेकर पुनः अपने घर लौट आये।

इस पर शौनक जी ने कहा— ‘सूतजी ! देवकी का प्रथम पुत्र मृत्यु के मुख से संकुशल लौट आया, काल का कवल होने से बच गया। इससे वसुदेव जी को तो बड़ी प्रसन्नता हुई होगी ?’

सूतजी बोले— ‘अजी महाराज ! प्रसन्नता क्या होनी थी ! वसुदेव जी तो जानते थे कि कस अव्यवस्थित चित्त वाला है। इसकी प्रसन्नता भी दुःख का ही हेतु है। अभी तो इसने बच्चे को लौटा दिया है। अभी कोई दूसरा आकर विपरीत सम्मति दे दे, तो अभी फिर मर्गा कर बच्चे को मरवा डालेगा। यह कोई निश्चय तो है ही नहीं कि एक बार इसने जो कह दिया वह पत्थर की लकीर बन गई। क्षण में कुछ क्षण में कुछ। यह कस महा दुष्ट है अजितेन्द्रिय है इसका मन इसके वश में नहीं है। इन्हीं सब कारणों से उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई।’

शौनक जी बोले— ‘हाँ, तो सूतजी ! फिर क्या हुआ ? वस ने उस वसुदेव जी के प्रथम पुत्र जिसका नाम पिता ने कीर्तिमान रखा था उसे किसी के कहने से फिर बुलाकर मार दिया या वह बचा रह गया।’

सूतजी बोले— ‘बचा कैसे रहता, महाराज ! वह तो मरने के लिये ही पैदा हुआ था। देवयि भगवान् नारद की सम्मति से उसने उसे पुनः मर्गवाकर मार डाला।’

शौनक जी ने पूछा— ‘सूतजी ! इतने घमत्मा भगवद्भक्त

भगवान् के अवतार नारद जी ने कसको ऐसी विपरीत सम्मति बघो दी ?”

सूतजी बोले—“महाराज ! इस सम्मति में भी बड़ा भारी रहस्य है । इस प्रसङ्ग को मैं आगे सुनाता हूँ आप सावधान हो कर ध्रुवण करें ।

छप्पय

जीजाजी ! तुम दृढ़-प्रतिज्ञ समदरसी झानी ।  
 शुचिता समता सत्य सरलता तुमरी जानी ॥  
 शिरा, ऊँ घर ले जाऊ काम का मेरो याते ।  
 अष्टम जो हो पुत्र बताया सुर भय ताते ॥  
 सुनि लौटे वसुदेवजी, दुष्ट वचन गहि सत गने ।  
 समुक्ति महा खल कस क, भये पुत्र लखि अनमने ॥





## कंस की सभा में देवर्षि नारदजी

[ ८२२ ]

सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ।  
शातयो वन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥  
एतद् कसाय भगवान्दर्शसाभ्येत्य नारदः ।  
भूमेर्भारयमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ॐ॥  
(श्री भा० १० स्क० १ प० ६४ श्लो०)॥

छप्पय

लौटि गये वसुदेव तबहिँ नारद मुनि आये ।  
कस करयो सत्कार कहे मुनि-‘सुत व्यौ लाये ॥’  
कस कहानी कही बताई नभ की बानी ।  
नारद बोले बिहँसि नीलि तृप नहिँ तुम जानी ॥  
नन्द और वसुदेव के, वन्धु दार सुत सुहृदगन ।  
सुर सुर ललना सबहिँ ये, चहत भार भू की हरन ॥

सद्गुरु का काम होता है जीव को दीप्ति से दीप्ति श्रीहरि के सम्मुख करना । पाप-कर्म भगवद्दर्शन में वन्तराय है । इसीलिये सद्गुरु सत्कर्म कराकर पापी को नाश कराते हैं । पाप कर्मों के

\* श्री गुरुदेव जो कहते हैं—“राजन ! जबकि भगवान् नारदजी ने कस को धाकर ये सब बालें कही, कि नन्द और वसुदेव पक्ष के जो श्री-स्त्री-पुरुष, वन्धु-बान्धव तथा सुहृदगण हैं, जो देखने में तुम्हारे सबक हैं, ये सब प्रायः देवता ही हैं । भूमि के भार उतारने तथा दैत्यो का वध करने के लिये ही मैं सब पङ्कज हैं ।”

सदृश कभी-कभी कोई ऐसा पुण्य-वर्म भी होता है, जो भगवद्-दर्शनों-में मुक्ति में-अन्तराय होता है, कारण कि पाप-पुण्य दोनों ही बन्धन के कारण हैं। अतः कभी-कभी सदगुरु ऐसे कर्मों के नाश के लिये शिष्य से लोक-विपरीति भी काम कराते हैं। गुरु आज्ञा समझकर शिष्य उन कर्मों को सहर्ष अनासक्त भाव से करते हैं, कारण यह है, कि अच्छे-बुरे कर्मों में हमारी आसक्ति नहीं। ऊपर से शुभ दिखाने वाला कर्म यदि हमें भगवद्दर्शन से-ससार से पार जाने से—रोकता है, तो ऐसे कर्म को हम परो की ठोकर भारकर ठुकरा देंगे और जो कर्म ऊपर से अनुचित और लोक-विरुद्ध दिखाई देता है और श्रीगुरुदेव की उसे करने की आज्ञा है तो हम उसे सहर्ष करेंगे, चाहे तरक में ही जाने की आज्ञा क्यों न हो। जैसे प्रकृति को पहचानने वाले सद्बुद्ध को ही रोग की उत्पत्ति उसके कारण और उसके शमन करने का ज्ञान है, वैसे ही शिष्य के अधिकार और उसकी प्रकृति को जानने वाले सदगुरु ही इस बात की भली-भाँति जानते हैं, कि कौन सा कार्य करने से इसे लाभ होगा। जैसे भिन्न-भिन्न प्रकृति होने से एक ही रोग को पात्र-भेद से भिन्न-भिन्न चिकित्साएँ हैं, उसी प्रकार साधकों की प्रकृति के अनुसार एक ही साध्य के अनेक साधन हैं। सब साधनों का सार यही है कि श्यामसुन्दर के चरण सरोरुहों में चित्त की वृत्ति अटक जाय, किसी भी प्रकार हो, मन में फँस जाय। काम से हो, क्रोध से हो लोभ से हो, अथवा भय से हो, तो भी उनकी प्राप्ति ही जायगी। यदि प्रेम स उनको सुमिरन हो, तब तो बहना ही क्या।'

सूतजी कहते हैं—“मुनियो! कस के लोटाने पर बसुदेव जी अपने प्रथम पुत्र को लेकर उयो हो राज सभा के द्वार से निकले द्यो ही बीणा बजावत, हरि गुण गावत, चोटी हिलावत, खड्ग

चटकावत देवपि नारद जी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने तो वसुदेव जी को पुत्र से जाते हुए देख ही लिया था, किन्तु वसुदेव जी तो अभ्यमनसू हो रहे थे। अतः उन्होंने नारदजी को नहीं देखा। वे रथ पर बैठकर बच्चे को लेकर चले गये।

इधर नारद जी को आते देखकर कस ने उनका स्वागत-सत्कार किया। पाद्य, अर्घ्य आचमनीय आदि देकर उनकी पूजा की, कुशल पूछा। दानों ओर से कुशल-प्रश्न होने के अनन्तर नारदजी ने पूछा—“राजन्! अभी बाहर जाते हुए मुझे वसुदेव जी दिखाई दिये थे। वे चमकते वस्त्र में लपेटे क्या वस्तु लिये जा रहे थे?”

कस ने सहज स्वभाव से कहा—“कुछ नहीं महाराज। उनका प्रथम पुत्र था। वे मेरे पास लाये थे, मैंने उन्हें लौटा दिया।” अनजान माने भाले व्यक्ति की भाँति नारद जी ने पूछा—“वे सद्यः ज्ञात पुत्र को यहाँ क्यों लाये थे?”

कस ने कहा—“अजो, भगवन्! क्या बताऊँ? एक ऐसी घटना घटित हुई, कि उसके कारण मुझे बड़ी चिन्ता हो गई है, आप अच्छे आ गये। आप ही मेरी शका का समाधान करें।”

नारद जी ने कुछ बात पर बल देते हुए कहा—“हाँ, हाँ, बनावट, क्या घटना घटित हो गई। आपका किस बात की चिन्ता हो गई?”

कस बोला—“भगवन्! देवकी का वसुदेव जी से अभी गत वर्ष विवाह हुआ था। विदाई के शवसर पर मैं उसके रथ को हाँक रहा था, उसी समय आकाशवाणी हुई कि “इसका आठवाँ पुत्र तुझे मारने वाला होगा।” मैं उसी समय देवकी को मार डालना चाहता था, किन्तु वसुदेव जी ने यह कहकर उसे बचा लिया कि इसके सब बालकों को मैं तुम्हें लाकर दे दिया करूँगा।

६२ भागवती कथा, खण्ड ३६

वसुदेव जो भले आदमी हैं। आज ही उनके पुत्र हुआ। अपनी प्रतिज्ञानुसार उसे वे यहाँ लेकर आये थे।

नारद ने कहा—“फिर आपने उसे लौटा क्यों दिया ?”

क स ने कहा—‘महाराज, उस बच्चे से मुझे क्या लेना है। आकाशवाणी ने तो अष्टम पुत्र से मुझे भय बताया था। जब अष्टम होगा, तब मैं उसे मार दूँगा।’



नारदजी बोले—“आपको क्या पता, अष्टम कौन है ?”

कस ने कहा—“महाराज, इसमें भी कुछ कहने-सुनने की बात है ? यह तो स्पष्ट है । यह प्रथम पुत्र है फिर द्वितीय-तृतीय-ऐसे ही जो इससे घाठवाँ होगा—वही मेरा शत्रु होगा, उसे ही मैं मार डालूंगा ।”

यह सुनकर नारदजी हँसे और उन्होंने एक गोल वृत्ताकार लकीर खींची । उस पर आठ कंकड़ियाँ रख कर वे बोले— बताने, इनमें आठवीं कौन सी है ।”

कस ने अपने सामने की कंकड़ी को गिनकर आठवाँ बता दिया । नारद जी ने कहा—‘हम इससे आरम्भ करते हैं ।’ फिर दूसरी से फिर तीसरी से—ऐस प्रत्येक की आठवीं सिद्ध कर दिया । फिर एक भ्रष्ट दल कमल ले कर कहा—इसमें आठवाँ दल कौन सा है ? ’ उन्हें भी सबकी आठवीं सिद्ध कर दिया फिर एक आठ फाँक की नारझी को घोलकर पूछा— इनमें आठवीं फाँक कौन सी है ? उसी प्रकार एक-एक कर गिनकर सबकी आठवीं सिद्ध कर दिया । एक पात्र में आठ बूँद पानी डालकर कहा—“इसमें से आठवीं बूँद निकालिये ।” आठ पेड़ों की एक में भर दिया और कहा—इनमें से आठवाँ निकालिये ।” आठ शूरो का गुच्छा लेकर कहा—इनमें से आठवाँ शूर को तोड़िये ।” कस बार बार गिनता सभी आठवाँ ही जाले । उसकी बुद्धि चकरा गई, चित्त में विभ्रम हो गया । नारद ज, ने कहा—“राजन् ! मैं तो देवताओं में ही रहता हूँ । देवता बड़े मायावी हैं, उनकी माया का पता नहीं चलता । न जाने वे किसको आठवाँ सिद्ध कर द । एक रहस्य की बात आपको और बताता हूँ, आपको उसका पता नहीं ।”

कस ने कहा—‘हाँ, महाराज ! बताइये । मैं तो देवताओं की भूर्तता समझता नहीं ।’

नारद जी बोले—“आप तो भोले हैं। देखिये, ये ब्रज में रहने वाले नन्दादि जितने गोप हैं, इन गोपों की जितनी स्त्रियाँ हैं, ये सभा देवी रूप है।”

कंस ने कहा—‘भगवन् ! देवता और देवाङ्गनायें—सब गोप-गोपों रूप में क्यों प्रकट हुए ?’

नारदजी बोले—“भूमि का मार बहुत बढ गया है। उसे ही उतारने में सब मनुष्य रूप में प्रकट हैं। ब्रज की बात तो जाने दा, तुम्हारे घर में भी बहुत से तुम्हें ही मारने की देवता उत्पन्न हुए हैं।”

कंस ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—‘मेरे घर में कौन उत्पन्न हुए।’

नारद जी बोले—देखो ये जितने यमुदेवादि वृष्णि-वंशी यादव हैं, उनके देवकी आदि जितनी स्त्रियाँ हैं, वसुदेव और नन्दादि गोपों के जितने जाति, वन्धु, मित्रगण, सगे सम्बन्धी और प्रेमी हैं—ये सब देवता हैं। तुन पूर्व जन्म में कालनेमि नामक असुर थे। तुम्हारे बहुत से प्रलम्बासुर, अघासुर, बकासुर, शरटासुर, तुणावर्त आदि अनेक साथी असुर भी उत्पन्न हुए हैं। ये सब तुम्हें मिल जायेंगे। जितने यादव तुम्हारे यहाँ नौकर-चाकर, सम्मति-दाता, मन्त्री आदि हैं, ये ऊपर से तो तुम्हारे सेवक बने हुए हैं। किन्तु ये सब तुम्हारे शत्रु ही हैं। ये सब तुम्हारा नाश करेंगे। अब तुमको जो उचित जान पड़े, सो करो हमने तत्त्व की यथार्थ बात तुम्हें बता दी।” इतना कहकर नारद जी ने अपनी वीणा उठाई और उस पर तान छेड़ते हुए बिना कंस से पूछे ही यह गये-वह गये। अब कंस को बड़ा भारी सोच उत्पन्न हो गया।

वह सोचने लगा—‘अरे, मैं तो भ्रम में था। ये सब सुहृद-

रूप में मेरे शत्रु हैं। मेरे कुटुम्बी ही मुझे मरवाने का पङ्कज रख रहे हैं। मेरी जाति वाले ही मेरे प्रतिपक्षी हैं। ये यादव सभी देवगण हैं। मुझे मारने वाला देवकी के ही गर्भ से उत्पन्न होगा। यह भी निश्चय नहीं कि आठवाँ कौन-सा है, जो भी आठवाँ हो जाय। इसीलिए मुझे वसुदेव और देवकी को कारावास में रखना चाहिये। देवकी का जो भी पुत्र उत्पन्न हो, उसे ही मार डालना चाहिये।" यही सब बात सोचकर उसने नगर-नायक को बुलवाया और उसे घाता दी—'देखो, तुम अभी मेरी आज्ञा से सेना लेकर वसुदेव जी के घर को घेर लो। फिर वसुदेव और उनकी पत्नी देवकी को पकड़कर मेरे समीप ले आओ। जो लोग इसमें विघ्न करें, उनका पक्ष लें उनको भी मार डालो।"

नगर-नायक ने युवराज कस की आज्ञा सिरोंधाय की। उसने तुरन्त जाकर वसुदेव जी का घर घेर लिया। वसुदेव जी तो यह सब पहले से ही समझते थे। उन्होंने उनका कोई विरोध नहीं किया। देवकी के सहित वे निर्विरोध भाव से कस के दरबार में चले आये। उन्हें सम्मुख देखकर क्रोध से झोठो को काटता हुआ, अपनी बड़ी-बड़ी लाल लाल आँखों को निकालता हुआ, कस वाला—'वसुदेव और देवकी दोनों को जख्मी से जकड़वा कर एक मुट्ठी किले में बन्द कर दो। उनमें घासपास कड़ा पहरा लगवा दो। एक विशेष अधिकारी इसी बाम पर नियुक्त किया जाय। देवकी जब गर्भवती हो, उसकी सूचना मुझे दी जाय। जब इसके गर्भ के दिन पूरे हो, उसकी सूचना दी जाय और बच्चा हाते ही तुरन्त मुझे बताया जाय। चाहे सर्दी हो, गर्मी हो, वर्षा हो, सू चल रही हो, हिम पड़ रहा हो, भोलें बरस रहे हो, धिन हो, रात्रि हो-सम्बधा हो-जब भी बच्चा जन्मे, उसी क्षण मेरे पास इसकी सूचना भिजवाई जाय।"

उस क्रूरकर्म का विरोध करने की किसमें सामर्थ्य थी ? सेवक हृदय से ऐसा नहीं चाहते थे, किन्तु करते क्या ? बलवान के सम्मुख बालने की उनमें सामर्थ्य नहीं थी । अतः इच्छा न रहने पर भी देवकी और वसुदेव जी को लोहे की जख्जिरी से जकड़कर एक घर में बन्द कर दिया गया, उन पर पहुँचेदार लूटा दिये गये । जब भी देवकी गभवती होती, उसकी सूचना कस को दी जाती । पहले कीर्तिमान पुत्र को तो उसने मार ही दिया । इसके अनन्तर जी-जा पुत्र होते, कस स्वयं जाकर उन सब को मार डालता । इस प्रकार उसने देवकी के छः पुत्रों को मार डाला ।

पुत्र उत्पन्न होते ही वसुदेव जी तुरन्त सन्धे में जात कर्म करके उनके नाम रख लेते । नाम क्या रखना था, नेगमात्र करना था । इस प्रकार कस ने देवकी जा के गर्भ से उत्पन्न कीर्तिमान, सुपेण, उदारचित्त भद्रसेन, शत्रु, सम्मदन और भद्र-इन छः पुत्रों का मार डाला ।”

इस पर शीतक जी ने पूछा—“सूतजी ! देवकी-वसुदेव इतने घमस्तिमा थे, इनसे एक दा नहीं छ-छ पुत्र उत्पन्न होते ही क्यों मारे गये ?”

यह सुनकर सूतजी बोले—“महाराज ! भगवान् के विधान को प्राणी ठाब-ठाक समझ नहीं सकता । उनके प्रत्येक कार्य में मञ्जुल निहित है । हम अपनी क्षुद्र बुद्धि से उनके यथार्थ रहस्य को जान नहीं सकते । देवकी के इन छः पुत्रों का जन्म लेते ही मार डाले जाने में कल्याण था । देवकी जा के गर्भ से साधारण जीव तो जन्म ले ही नहीं सकता था । वे सब प्रजापति मरौचि के पुत्र छः ऋषि थे ।”

शीतकजी ने पूछा—“सूतजी ! उन देवतुल्य ऋषियों ने ऐसा



क्या अपराध किया था, जिससे उन्हें जन्म लेते ही असुर के हाथों मरना पड़ा ?”

सूतजी बोले—“महाराज ! सबसे बड़ा अपराध है महत् पुरुषों की अवज्ञा। ससार में इससे बड़ा अपराध कोई है ही नहीं। महापुरुषों में स्वाभावानुसार कभी कोई नीति विरुद्ध अनुचित कार्य हो भी जाय तो भी उसकी निन्दा न करनी चाहिये क्योंकि सभी धर्मों की प्रकृति से विवश है, सभी भगवत् प्रेरणा से ही पाप पुण्य में प्रवृत्त होते हैं। मनुष्य को चाहिये कि दोष देखने हो, तो अपने दोष, गुण देखने हो तो दूसरों के। ससार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं, जिस में कोई गुण न हो। ससार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जो किसी न किसी रोग की औषधि न हो। स्वर और व्यञ्जनो में कोई भी ऐसा वर्ण नहीं जो मन्त्र न हो। केवल उसकी योजना करना उन्हें समझकर उपयुक्त स्थान में प्रयुक्त करना ही योग युक्त बुद्धिमान का कार्य है। अतः सदा दूसरों के गुण ही देख अपने मदा अवगुण देखे। जो दूसरों के अवगुण देखता है, उसमें वे धनमुल निश्चय ही पा जाते हैं, क्योंकि जीव तो सार्वभौम है। जा जैसा सार्वभौम करेगा उसके वैसे ही सत्कार बनने। युवती स्त्री का सार्वभौम जाते ही चित्त चञ्चल हो जाता है। इसी प्रकार दोनों का स्मरण करते ही वे दोष मन में आ जाते हैं। भावना ही ससार में प्रधान माना गई है। भावों में ही पुरुष असुर बन जाता है, और भावों में ही देवता।

स्वायम्भुव (मन्वन्तर में) महर्षि मरीचि के ऊर्ण नाम वाला पत्नी में देव सदृश स्मरण उद्गीथ, परिष्कृत, पतङ्ग, क्षुद्रभृद् और पुण्ड्र—ये छः ऋषिगुणों से उत्पन्न हुए थे। जिस समय प्रजा जो अपनी कन्या सरस्वती से स्नान करने को सम्मन्त्रित हो रहे,

ये छ अत्यन्त ही अवहेलना पूर्वक ब्रह्माजी को दोषी ठहराकर हंसने लगे । इस पर ब्रह्माजी को बड़ा क्रोध आया कि ये मेरे पौत्र होकर मेरी हँसी उड़ा रहे है । इसलिये उन्होंने तुरन्त उन सब को शाप दिया—“जाओ, भूखों ! तुम सब असुर-योनि में उत्पन्न हो जाओ ।”

ब्रह्माजी का शाप कभी अन्यथा तो हा हो नहीं सकता । वे जाकर हिरण्यकशिपु के पुत्र हुए । उनका अपराध उतना बड़ा नहीं था । अतः भगवान् ने कृपा करके योगमाया को आज्ञा दी—“इन्हे देवकी के गर्भ में ल जाओ । वे ही मारीचि-पुत्र थे छ थे, पीछे भगवान् की कृपा से ये मासुरी योनि छोड़कर देव-लोक चले गये ।”

शौनक जी न पूछा—“हाँ, तो सूतजी ! फिर क्या हुआ ? वस का अन्य यादवा न तथा उनके पिता उपसेन ने विरोध नहीं किया ।”

सूतजी बोले—“उन सब में इतनी सामर्थ्य कहाँ थी ? उसने तो सब को वश में कर लिया था, स्वयं राजा बन बैठा था । उसी प्रसंग को श्रवण कहता है, आप सावधान होकर उसके सुने ।”

#### छप्पय

नमवानी मह छिपी गूढ अतिराध चतुराई ।  
कमल पुष्प मह सबई आठवे दल तो भाई ॥  
यादव हमरे शत्रु करो इन सब तैं कुट्टी ।  
सुनि ने रत्न कूँ तुरत पढाई उलटी पट्टी ॥  
गारद आनि लगाई कै, गये कंस चिन्ता भयी ।  
आयसु यादव दमन की, सेनापति तूँ दे दयी ॥

## कंस स्वयं राजा बन गया

(८२३)

उग्रसेन च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ।

स्वयं निगृह्य बुरुजे शूरसेनाच्च महाबलः ॥१॥

(श्री भा० १० स्क० १ अ० ६६ श्लोक)

छप्पप

भगवाणे पुनि तुरत पकरि वसुदेव देवकी ।

जर्जरनि ते' जकड़ि हने सुत महापातकी ॥

पितु पग धेड़ी डारि वगाये बन्दी भूपति ।

सिंहासन पर स्वयं विराज्यो पापी खल मति ॥

अगाधार नित प्रति करे, अति दुःखित यादव भये ।

कोशल, कुरु, केकय, निपद, सब देशनि महँ भगि गये ॥

जो केवल जीने के ही लिये, पेट पालने के ही निमित्त इस  
भरवर शरीर को पुष्ट करके, इन्द्रिय सुखों के उपभोग के ही  
निमित्त—जीते हैं, वे देव योनि में होते हुए भी असुर हैं । इसके  
अतिरिक्त जो भगवद् भजन के ही निमित्त जीते हैं भगवद्भक्ति  
ही जिनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य है, वे असुर योनि में  
उत्पन्न होने पर भी आसुरी भावों से रहित हैं देवता हैं । प्राणी  
इन प्राणियों के लोभ से कितने पाप करता है ? माता पिता  
भाई सगे-सम्बन्धी तथा सुहृदों का भी निर्दयता पूर्वक वध कर

॥ श्री बृहदेव जो कहते हैं—'राजन् ! महाबलवान कस धरने  
पिता उग्रसेन को जो मृदु, भोज, और अन्धक वधोप मादवों के अधिना-  
यक थे, बन्दीगृह में डालकर शूरसेन देश का राज्य स्वयं करने लगा ।'

देता है। इसना करके भी वह प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता, मरकर अपना अंश छोड़कर रिक्त-हस्त चला जाता है। पूर्व जन्म के सस्कारों व वशीभूत होकर जीव पुनः-अपुनः कर्मों में प्रवृत्त हो रहा है। वे नट नागर ही सबको नाचा रहे हैं। वे अखिल ब्रह्माण्ड के सूत्रधार ही सबसे भीति-भीति अभिनय करा रहे हैं। जीव उनके ही शरैस पर नाचता है। उन्हीं की क्रीडा को सुखमय, घानन्दमय, उत्सासमय तथा उत्साहवर्द्धक बनाने को सबकी चेष्टायें हैं।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! यह कस पूर्व जन्म से कान्तेमि नामक दैत्य था। देवासुर सग्राम में यह भगवान् के हाथ में मारा गया ! अपनी माता के दीप से यह माता के पितृगृह में ही गर्भ में आया था और दश वर्ष गर्भ में रहा। इस कथा को पोंछे मैं भोज वंश के वरुण के प्रसङ्ग में कह ही आया हूँ। पहले तो यह भूला हुआ था, नारद जी ने जब इसे स्मृति दिला दी तब तो इस पूण विश्वास हो गया, “मैं पूर्व जन्म का असुर हूँ, देवताओं से मेरा वंश है, ये जितने यादव हैं, सभी मेरे प्रतिपक्षी शत्रु हैं, ये सब मेरे विशद पशुपन्न कर रहे हैं। यद्यपि मैं बलवान् हूँ, फिर भी मेरे हाथ में शक्ति नहीं है। हमारे यदु, भोज अथवा वृद्धि-वंश में बहुत से नायक हैं। यदुवंशी छत्र-चैत्र लगा कर सम्राट के सिंहासन पर तो बैठते नहीं। एक-एक वंश के अधिनायक होते हैं। मेरे पिता उगसेन प्रधान अधिनायक हैं। सब ने इन्हें ही बुद्धिमान समझा। अधिनायक का सम्पादन चुन दिया है। शूरसेन देश का शासन प्रायः ये ही करते हैं। और अब अधिनायक तो केवल सम्पत्ति मात्र देते हैं। वसुदेव जी भी इस शासन समिति के सदस्य थे। इन्हें मैंने सभी की शत्रु मति के विशद पक्षकार बन्ध कर दिया है। इस पर हमारे

वश की समिति में असंतोष होगा। अतः मर्त्य प्रथम प्रघाम नायक अपने पिता को कारावास में डालकर शासन की बागडोर में अपने हाथ में ले लूँ और वर्तमान मम को भञ्ज कर दूँ। जो सामन्त मेरे पक्ष में हों, उन्हें तो रखूँ जो मेरे पक्ष का समर्थन न करते हों उन्हें या तो राज्य से भगा दूँ या पदच्युत करके कारावास में डाल दूँ। जब तक मेरे पिता इस गणतन्त्र राज्य के समापति हैं तब तक मैं कोई कार्य न कर सकूँगा। पिता हों मेरे मार्ग में कण्टक हैं। इन्हें निजाल कर मैं निष्कण्टक हों मायुर-मण्डल और धूरसेन प्रदेश का शासक हो सकूँगा।” यही सब सोचकर वह अपने पिता को पकड़ने का अवसर तोचने लगा। उसने सेवकों से यह कार्य कराना उचित नहीं समझा। स्वयं ही उसने अपने हाथों इस कार्य को करना चाहा।

शौनक जी बोले—“कस ने अपने पूजनीय पिता को बंधो पकड़ना चाहा?”

सूतजी ने मुँहलाकर कहा—“महाराज सैकड़ों बार तो मैं इसका उत्तर दे चुका हूँ। दुष्टों के कोई माता पिता समे-सम्बन्धी नहीं होते। ये अपने प्राणों का ही प्रेमपूर्वक पालन करने वाले असुर प्रकृति के नीच पुरुष, तथा लोभ में ऊँचे भूपतिगण अपने माता पिता भाई तथा समे-सम्बन्धी, सहृदयों की हत्या कर खाली हैं। इनको कर्तव्याकर्तव्य का विवेक रहता ही नहीं। जो अपने स्वार्थ में विघ्न प्रतीत होते, उन्हें वे मार डालते हैं, चाहे वे कोई भी क्यों न हों।

शौनक जी बोले—“तो हाँ सूतजी! फिर क्या हुआ?”

सूतजी बोले—“श्रीजी, महाराज! उस धूर्त की घूर्तता तो देखिये। एक दिन उपसेन जी प्रातःकाल शय्या से उठे। तभी कस नहा-धोकर चदन, गंध पुष्प और अक्षत लेकर उनके समीप

पहुँच गया और बोला—“पिताजी ! तनिक चरण नीचे तो कीजिये, मैं उनका पूजन करूँगा।”

उमरेन जी बड़े प्रसन्न हुए। आज इस खल को ऐसी सुबुद्धि कैसे हुई ? उन्होंने तुरन्त अपने दोनों पैर नीचे कर दिये। कस ने उन्हें धाकर गध, अक्षत पुष्प आदि चढाये और छिपी हुई वेडी को निकाल कर पैरों को जकड़ दिया, हाथ में हथरडियाँ डाल दी और बोला—‘पिनजी ! आप अब बूढ़े हो गये हैं। अपने दायाद वसुदेव जी के समीप रहकर आप चैन की बशी बजाइये। अब आपको राजकाज के झंझटों से कुछ काम नहीं। यह कहकर उसने उन्हें भी वसुदेव जी के समीप ही दूसरे घर में बन्द कर दिया।

अब उसने पुरानी यादव सामन्त-सभा को भङ्ग कर दिया। अपने मन से ही उसने प्रलम्ब, लक, चाणूर, तृणावर्त, अथ मुष्टिक अरिष्ट, द्विविद, केशी धेनुक आदि को अपने सभा का सदस्य बनाया। यादवों में अकूर आदि जो उसके सर्वदा पक्ष के थे, जो उसकी हानि में हानि मिलाते थे, उन्हें भी सभा में रख लिया। उसने कहा—“हमारे मन्त्रिमण्डल में छिपों को भी अधिकार मिलने चाहिये। एक मन्त्रिणी खो भी हो।” इसलिये पूतना को उसने मन्त्रिमण्डल में रखा। और गुप्तचर विभाग उसे सीप दिया। पृथ्वी पर जो दूसरे बलवान अशुर प्रवृत्ति के जरा सन्ध, बाणासुर, भीमासुर आदि-आदि राजा थे उनसे इसने सन्धि कर ली। इसका पक्ष प्रबल सा गया। सभा में बहुमत भी इसे प्राप्त हो गया। स्वयं सभा का अधिनायक बनकर यह शासन करने लगा। जिन सामन्तों को उसने समझा कि वे मेरे पिता उमरेन के पक्ष के हैं, या भीतर ही भीतर उनसे सहानुभूति रख कर मुझे पदच्युत करना चाहते हैं, उनसे उसने गहरी शत्रुता ठान

सी, उनके ऊपर विशेष कर लगा दिये भूति-भूति के प्रतिवन्ध लगा दिये किसी पर अस्व्य अभियोग ही चला दिया, जिन असुर राजाओं के साथ उसकी सन्धि थी उनके यहाँ अपन असुर राज-दूत रख दिये उनको चेतावनी दे दो, हमारे यहाँ का कोई यादव भागकर तुम्हारे राज्य में आवे तो उसकी सूचना हम दे देना । '

इस प्रकार उपरान्त तथा वसुदेव के पक्षपाती यादवों को वह भूति-भूति व बल देने लगा । इसी वजह से सत्ता के सम्मुख बिना किसी शक्तिशाली नेता के साधारण जन तथा सामान्यता कर ही क्या सकते हैं ? अतः उन्होंने देश छोड़कर जाना ही उचित समझा । उन निष्कर्मण्य यादवों को राज्य से बाहर जाने की सुविधा कस ने कर दी । वे बेचारे अपने घर वार को छोड़कर दूसरे-दूसरे राज्यों में जाकर बसने लगे । कोई तो कुछ जाङ्गल देश में चले गये । घुतराष्ट्र जी ने उन सब को वसन की सुविधा दे दी । कोई पांचाल देश में चले गये । महाराज द्रुपद ने उनको सत्कार पूर्वक ठहराया । कोई कोई मथुरा मण्डल से भागकर केकय देश में चले गये । कोई वाल्वा विदभ, निपध, विदेह तथा कोशल आदि देशों में बस गये । इस प्रकार यादव तथा कोशल आदि देशों में बस गये । इस प्रकार यादव दारणार्थी अपने घराबों छोड़कर भिन्न भिन्न प्रदेशों में जाकर बस गये । अब तो सब खुलकर खेलने लगा । उसने अपने विरोधी पक्ष को एक प्रकार से समूल ही नष्ट कर दिया । उसे जिस पर मन्त्रेष्ट होता कि यह मेरे दल का समर्थक नहीं है उसे हाँ साम दाम दण्ड तथा भेदनीति का माश्रय लेकर या तो राज्य से बाहर निकाल देता, या कोई भूटा अभियोग लगाकर उसे क़ारावास में ड़ूस देता । सब अतङ्क छा गया । मन ही मन वैसे उससे सब घृणा करते थे किन्तु उनके मुख पर सब उसकी प्रशंसा ही करते थे ।

जब उसने अपने कण्टक-रूप विपदाियों को अपनी बुद्धि से निर्मूल कर दिया, तब वह किसी बली राजा की कन्या के साथ विवाह करने की बात सोचने लगा। उन दिनों पृथ्वी पर मगध का राजा जरासन्ध सबसे श्रेष्ठ सम्राट समझा जाता था। उसके पास प्रगणित सेना थी। उसकी धन सम्पत्ति का कोई वारापार नहीं था, सब राजा उसके नाम से धर-धर काँपते थे। उसके अस्ति और प्राप्ति नाम की दो विवाह-योग्य पुत्रों को कोई भी। वह उनका विवाह उस राजा के साथ करना चाहता था, जो सर्वश्रेष्ठ बली हो। उसने राजाओं के बल की परीक्षा के लिये एक प्रण रच रखा था कि जो कोई इस प्रण को पूरा कर दे, उसी के साथ मैं अपनी कन्याओं का विवाह कर दूँ। इस संकल्प ने उसने स्वयंवर रचा और पृथ्वी के सभी बली राजा तथा राजकुमार उसमें बुलाये गये। कंस भी उस स्वयंवर में गया। जरासन्ध से इसकी मंत्रीपूर्ण संधि तो हो चुकी थी। अतः जरासन्ध ने इनका भली प्रकार स्वागत-सत्कार किया। सब राजाओं के समक्ष कंस ने जरासन्ध के पण को पूरा किया। अतः उसने सहर्ष अपनी दोनों कन्याओं का विवाह कंस के साथ कर दिया। इससे कंस को बड़ी प्रसन्नता हुई, साथ ही उसका अहङ्कार और भी बढ़ गया। वह सोचने लगा—“अब मेरा कोई कर ही क्या सकता है ? जरासन्ध मेरे श्वसुर है, वाण-भोग जैसे मेरे मित्र हैं। अब किसका माहस है, जो मेरे सम्मुख दृष्टि उठा सके ? इसी अभिमान के वशीभूत होकर वह प्रजा के लोगों पर भ्रांति-भ्रांति के प्रत्याचार करने लगा। जब तक अधिक से अधिक प्रत्याचार न होंगे, तब तक भगवान् का अवतार कैसे होगा ? ये सब भगवान् के अवतार के ही उपक्रम हैं। जब सब अरुण क्रिया नहीं होती, तब तक उसके विरुद्ध बड़ी प्रतिजिया भी नहीं होती। जब



तक घोर अत्याचार नहीं होते, तब तक जीवन का संचार नहीं होता। जो जाति अत्यन्त शक्तिहीन निर्बल हो जाती है, उसी पर अत्याचार होते हैं। या तो उन अत्याचारों से उसका अन्त हो जाता है या प्रतिक्रिया उत्पन्न होकर वह सबल शक्तिशालिनी तथा उत्तम बन जाती है। प्रकृति एक दशा में किसी को भी रखना नहीं चाहती। उसका सिद्धान्त है— या तो मरो या आगे बढ़ो।' निष्क्रम्य हूँ दूसरों के मार्ग को राके रहना उचित नहीं। जब कस के ऐसे अत्याचार बढ़ने लगे, तब भगवान् ने पूर्व उनके तेजोमय अग्र सकपणावतार शेषजी का अवतार हुआ। वे देवकी जी के गर्भ में आये और रोहिणी के उदर से उत्पन्न हुए।'

शौनकजी ने पूछा—“सूतजी। महाराज परीक्षित ने यही तो शका की थी कि बलराम जो देवकी और रोहिणी दोनों के ही पुत्र कैसे हुए। वही शका हमारी भी है।’

सूतजी बोले—“महाराज वही कथा तो अब मैं कहने जा रहा हूँ, उस कथा में ही इस शका का समाधान हो जायगा। आप सकपणावतार श्री बलराम जी के जन्म का ही प्रसङ्ग अब सुनें।”

#### दृश्य

वृष्णावतं चारुं पूतना श्रीर वकाशुर।  
 घेनुक, केशी द्विविद प्रलम्बहु असुर अघाशुर॥  
 कस सचिव सय बने करें उत्पात निरन्तर।  
 कलु यादव बचि गये न पावें परि ते आदर॥  
 निमय करत सय अति दुस्ति, होहु अवतरित हे प्रभो।  
 वरहि अमुरयव अघ अमित, हरहु भार भू को विभो॥